डिंगल में वीररस

सम्पादक

श्री मोतीलाल मेनारिया, एम० ए०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

संवत् १९९२

सुलभ साहित्य माला

डिंगल में वीररस

सम्पादक
श्री मोतीलाल मेनारिया, एम० ए०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
संवत् २००३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस ग्रंथ को 'साहित्य-रत्न' परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक स्वीकृत किया है। आशा है विद्यार्थी इससे समुचित लाभ उठा कर श्री सेनारिया जी को प्राचीन साहित्य के अन्यान्य उपयोगी ग्रंथों को उपलब्ध करने के लिये और भी अधिक अवसर देंगे।

स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराज सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में जो पांच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ-साहित्य-माला" के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रथन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस "माला" के द्वारा हिन्दी साहित्य की जो श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महोदय को है। उनका यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

साहित्य मंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

निवेदन

भारतीय साहित्य में राजस्थानी साहित्य (जो डिंगल साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है) का स्थान कितने महत्त्व का है यह बात साहित्य-प्रेमियों से छिपी हुई नहीं है। राजस्थानी भाषा के साहित्य में जो भाव-स्फूर्ति और उद्वेग है वह केवल राजस्थान के लिये ही नहीं, वरन् सारे भारतवर्ष के लिये गौरव की वस्तु है। इतना ही नहीं, राजस्थानी कवियों की वीररस की कविता तो इतनी उच्च कोटि की बन पड़ी है कि उस तरह की कविता का संसार के अन्य किसी भी साहित्य में मिलना दुर्लभ है। इसका कारण यह है कि इन कवियों ने जो कुछ भी लिखा है वह सुनी सुनाई बातों के आधार पर नहीं, बल्कि अपने निजी अनुभव के आधार पर। इसीलिये इनके काव्य में सचाई और स्वाभाविकता है। कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर को एक बार जब ये कविताएँ सुनाई गई तब वे सुनकर मंत्र-मुग्ध से हो गये और बोले—"भक्ति रस का काव्य तो भारत-वर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया जाता है। राधा-कृष्ण को लेकर हरएक प्रान्त ने मद या ऊँची कोटि का साहित्य पैदा किया है। लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य-निर्माण किया है उसकी जोड का साहित्य और कही भी नहीं मिलता।" रवि बाबू के इस कथन मे कितना सत्य है इसका अनुभव सहृदय पाठकों को इस ग्रथ के पढने से होगा।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिये तैयार की गई है। इसमे डिंगल साहित्य के पाँच सर्वश्रेष्ठ कवियों की वीररसात्मक कविताओं का सग्रह किया गया है। पुस्तक के आरम्भ में एक भूमिका दी गई है जिसमे डिंगल भाषा की उत्पत्ति, उसके व्याकरण, साहित्यिक तथा ऐतिहासिक विशेषताओं आदि पर सक्षेप में प्रकाश डाला गया है। संकलित कविताओं को पढ़ने के पहले विद्यार्थी यदि इस भूमिका को ठीक तरह से हृदयंगम कर लेंगे तो उन्हें आगे बढने मे अधिक सुविधा होगी। प्रत्येक कवि की कविता के पूर्व उसकी सक्षिप्त जीवनी और उसके काव्य की आलोचना भी दे दी गई है। कठिन शब्दों तथा वाक्यांशों का स्पष्टीकरण फुटनोटों मे कर दिया गया है

और जहाँ कहीं आवश्यक समझा गया है वहाँ भावार्थ भी दे दिये हैं। यथासम्भव पुस्तक को विद्यार्थियों के लिये अधिक से अधिक उपादेय बनाने की कोशिश की गई है और आशा है कि कम से कम उत्तमा के विद्यार्थियों को तो अब इस नवीन भाषा के समझने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी।

इस पुस्तक के लिखने में जिन ग्रंथों से सहायता ली गई है उनकी सूची इस पुस्तक के अन्त में दी हुई है। उनके रचयिताओं के आभार को हम हृदय से स्वीकार करते हैं। पुस्तक विद्यार्थियों के लिये और उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखी गई है। लेकिन काव्य-रसिक अन्य सज्जनों का भी इससे मनोरंजन हो सकेगा, ऐसी आशा है। जिन सज्जनों के पास पूरी पुस्तक को पढ़ने के लिये समय नहीं है उनसे भी हमारी प्रार्थना है कि वे कविराजा सूर्यमल की कविताओं को तो अवश्य पढ़ें। इससे उन्हें मालूम हो जायगा कि वीररस की वास्तविक कविता कैसी होती है।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिकारियों ने डिंगल भाषा को अपने पाठ्यक्रम में स्थान देकर अपनी उदारता और गुण-ग्राहकता का जो परिचय दिया है वह उनके उच्च गौरव के सर्वथा अनुकूल है और इस सुकृपा के लिये उनके प्रति जितनी भी कृतज्ञता प्रकट की जाय वह थोड़ी है। उनके इस सुयोग से 'डिंगल' और 'सम्मेलन' दोनों की लोकप्रियता बढ़ेगी, इसका हमें पूर्ण विश्वास है।

उदयपुर (मेवाड़)
ता० २०-८-१९४०

विनीत
मोतीलाल मेनारिया

विषय-सूची

—:०:—

भूमिका

(१) डिंगल भाषा की उत्पत्ति और उसका नामकरण

राजस्थान के कवियों ने अपनी कविताएँ दो प्रकार की भाषाओं में लिखी हैं, डिंगल और पिंगल। चन्दबरदाई, दुरसाजी, पृथ्वीराज आदि की गणना यहाँ डिंगल के कवियों में और मीरा, वृन्द, बिहारी आदि की पिंगल के कवियों में की जाती है। यह डिंगल राजस्थान की बोलचाल की भाषा राजस्थानी का साहित्यिक रूप है और पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन, अधिक साहित्य-सम्पन्न तथा अधिक ओजगुण-विशिष्ट है। उत्पत्ति इसकी अपभ्रंश से हुई है।

भाषा-वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मध्य एशिया को छोड़ कर जिस समय हमारे पूर्व पुरुष, प्राचीन आर्य पंजाब में आकर बसे थे और उस समय जो भाषा वे बोलते थे उससे वैदिक संस्कृत की उत्पत्ति हुई। कालान्तर में इस वैदिक संस्कृत ने साहित्यिक रूप धारण कर लिया जिसका नाम पीछे से संस्कृत हुआ। पर साथ साथ वह बोलचाल की भाषा भी बनी रही। प्राचीन काल की बोलचाल की इस भाषा का नाम प्राकृत पड़ा। काल के अनुसार विद्वानों ने प्राकृत को दो भागों में विभक्त किया है, पहली प्राकृत और दूसरी प्राकृत। पहली 'पाली' के नाम से प्रसिद्ध है और दूसरी 'प्राकृत' के नाम से। आगे चलकर, देश-भेद के कारण, इस प्राकृत के भी कई भेद हो गये जिनमें चार मुख्य माने गये हैं—शौरसेनी, मागधी, अर्ध-मागधी और महाराष्ट्री[1]। धीरे धीरे प्राकृत का भी साहित्यिक संस्कार होने लगा और शिष्ट समुदाय ने इसे भी व्याकरण के जटिल नियमों से जकड़ दिया जिससे इसकी स्वच्छन्द गति रुक गई और इसका प्रचार-क्षेत्र केवल पढ़े-लिखे लोगों तक ही सीमित रह गया। परन्तु इसके साथ-साथ जन साधारण की भाषा का जो प्रवाह अबाध रूप से चल रहा था वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया और अंत में प्राकृत उस रूप को प्राप्त हुई जो आजकल अपभ्रंश के नाम से प्रसिद्ध है।

---

१ हिन्दी शब्दसागर की भूमिका; पृ० ४।

विक्रम की छठी अथवा सातवीं शताब्दी के आसपास अपभ्रंश ने प्राकृत को लोकभाषा के पद से च्युत किया, ऐसा भाषातत्वज्ञों का अनुमान है। इस समय से लगाकर विक्रम की दशवीं शताब्दी के अंत तक अपभ्रंश का राजस्थान में ही नहीं, बल्कि समस्त उत्तरी भारत में पश्चिम से लेकर पूर्व में मगध तक और दक्षिण में सौराष्ट्र तक खूब प्रचार रहा। पर बाद में इसकी भी वही गति हुई जो पहली तथा दूसरी प्राकृत की हुई थी। अर्थात् इसमें भी साहित्यरचना होने लगी और वैयाकरणों ने इसे भी अस्वाभाविक नियमों से बाँधना प्रारंभ किया। इससे अपभ्रंश के भी दो रूप हो गये। एक रूप तो वह था जिसका साहित्य में व्यवहार होता था और दूसरा वह रूप जिसके द्वारा जनसाधारण का विचार-विनिमय हुआ करता था। पहला रूप तो व्याकरण के नियमों से बँधकर स्थिर हो गया पर दूसरा बराबर विकसित होता रहा। आगे चलकर उसके भी कई भेद-उपभेद हो गये जिनमें तीन मुख्य थे—नागर, उपनागर और ब्राचड़। इनमें भी नागर अपभ्रंश मुख्य थी। अणहिलवाड़ा के चालुक्य राजा सिद्धराज जयसिंह देव और कुमारपाल के आश्रित जैन विद्वान हेमचन्द्र (जन्म सं० ११४५) ने अपने ग्रंथ 'सिद्ध हेमशब्दानुशासन' में इस नागर अपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत को माना है। इसी नागर अपभ्रंश से राजस्थानी-भाषा का जन्म हुआ जिसके साहित्यिक रूप का नाम डिंगल है।

राजस्थानी भाषा का डिंगल नाम कब और क्यों पड़ा, इस विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं और अपनी अपनी पहुँच तथा बुद्धि के अनुसार उन्होंने नाना प्रकार की कल्पनाएँ की हैं। नीचे हम प्रधान प्रधान मत और उनकी समीक्षाएँ देते हैं।

पहला मत—'डिंगल' शब्द का असली अर्थ अनियमित अथवा गँवारू था। ब्रज-भाषा परिमार्जित थी और साहित्य-शास्त्र के नियमों का अनुसरण करती थी। पर डिंगल इस सम्बंध में स्वतन्त्र थी। इसलिये इसका यह नाम पड़ा।[1]—डाक्टर एल० पी० टैसीटरी।

समीक्षा—डिंगल शब्द को गँवारू का द्योतक मान कर टैसीटरी महोदय ने अपने मत को पुष्ट करने की कोशिश की है, जो एक भारी भूल है। कारण, एक तो यह है कि प्रारंभ में डिंगल गँवारों की भाषा नहीं, बल्कि पढ़े-लिखे चारण-भाटों की भाषा थी जो बड़े विद्वान् और

---

१ Journal of the Asiatic Society of Bengal Vol. X, No. 10 p.376.

काव्य-पटु होते थे। दूसरे, राज दरबारों मे डिंगल का व्रजभाषा से भी अधिक सम्मान होता था। अतः शिष्ट समुदाय की भाषा को हर्गिज भी गँवारू नहीं बतलाया जा सकता। इसके सिवा उनका यह कथन भी, कि डिंगल अनियमित थी अर्थात् साहित्य शास्त्र के नियमों से मुक्त थी, ठीक नहीं है। डिंगल के प्राचीन ग्रंथों तथा फुटकर गीतों से स्पष्ट विदित होता है कि व्याकरण की विशुद्धता के साथ-साथ छंद, रस, अलंकार आदि काव्यांगों का डिंगल की कविता में भी उतना ही ध्यान रक्खा जाता था जितना कि व्रजभाषा की कविता में। हाँ, शब्दों की तोड़ मरोड़ व्रजभाषा की अपेक्षा डिंगल में अवश्य कुछ अधिक पाई जाती है, पर इसीलिये उसे एक गँवारू भाषा मान लेना उचित नहीं प्रतीत होता है। साराश यह कि प्रारंभ में न तो डिंगल का अर्थ गँवारू था और न डिंगल भाषा अनियमित जिससे उसका यह नाम पड़ा हो।

दूसरा मत—प्रारंभ में इस भाषा का नाम 'डगळ'—था पर बाद में 'पिंगल' शब्द के साथ तुक मिलाने के लिए उसका 'डिंगल' कर दिया गया।[1]

—डा० हरप्रसाद शास्त्री

समीक्षा—शास्त्री जी ने डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति 'डगळ' से बतलाई है और अपने मत के समर्थन मे चौदहवीं शताब्दी के एक प्राचीन गीत का अंश भी उद्धृत किया है जो उन्हें कविराजा मुरारिदान जी से प्राप्त हुआ था वह अंश यह है :—

"दोसे जंगळ डगळ जेय जळ बगळ चाटे।
अनहुँता गळ दियै गळाहुँता गळ काटे॥"

गीत के इस अंश का अर्थ शास्त्री जी ने नहीं दिया। केवल इतना ही कह कर छोड़ दिया है 'इससे स्पष्ट है कि जंगल देश अर्थात् मरुदेश की भाषा डिंगल कहलाती थी।' इस उद्धृत अंश में तो भाषा का कहीं जिक्र भी नहीं है। फिर न मालूम शास्त्री ने इस तरह का निर्णय किसके आधार पर दे दिया। भाषा, रचना-शैली आदि से भी यह कविता सोलहवीं शताब्दी की लिखी हुई प्रतीत नहीं होती। फिर भी थोड़ी देर के लिये यदि मान भी लिया जाय कि यह उसी समय की रचना है तब भी प्रश्न यह

---

१ preliminary report on the operation in search of MSS. of Bardic chronicles, p. 15.

उठता है कि प्रारंभ में डिंगल का 'डगळ' नाम पड़ा क्यों? डगळ कहते हैं मिट्टी के ढेले को अथवा अनगढ़ पत्थर को और इसी अर्थ में यह उपरोक्त कविता में भी प्रयुक्त हुआ है। यदि पिंगल से तुक मिलाने के लिये 'डगळ' का डिंगल बना दिया गया तो पहले वह भाषा कौन-सी थी जिसकी तुलना में यह भाषा (मरुदेश की भाषा) डगळ के समान अनगढ़ और अमार्जित दिखाई पड़ती थी। ब्रजभाषा तो हो नहीं सकती क्योंकि चौदहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा का इतना प्रौढ़ एवं व्यवस्थित रूप न था कि उसके सामने डिंगल ढेले के समान असंस्कृत दीख पड़ती। राजस्थानी भी नहीं हो सकती। क्योंकि राजस्थानी उस समय बोलचाल की भाषा थी और बोलचाल की भाषा की अपेक्षा साहित्य-निर्माण की भाषा अधिक प्रौढ़ और अधिक परिमार्जित होती ही है। इसके सिवा एक बात और भी है वह यह कि प्रारंभ में डिंगल एक तरह से चारण-भाटों ही की भाषा थी और ये लोग बड़े अनुराग के साथ इस भाषा में काव्य-रचना करते थे। उनकी वीररस की कविताएँ तो प्रायः इसी भाषा में हुआ करती थीं। अतएव हमारे ख्याल से कोई भी ऐसा अकृतज्ञ, आत्म-सम्मान से शून्य और विचारहीन पुरुष न होगा कि जो जिस भाषा में, चाहे वह कितनी ही अनुन्नत तथा अविकसित क्यों न हो, अपने विचार ही प्रकट करता न आया हो, बल्कि जो उसके उदरपूर्ति का भी साधन रही हो उसे हीनता की दृष्टि से देखे और 'डगळ' नाम देकर उसे अपमानित करे।

तीसरा मत—डिंगल में 'ड' वर्ण बहुत प्रयुक्त होता है। यहाँ तक कि यह डिंगल की एक विशेषता कही जा सकती है। 'ड' वर्ण की इस प्रधानता को ध्यान में रखकर ही पिंगल के साम्य पर इस भाषा का नाम डिंगल रक्खा गया है। जिस प्रकार बिहारी लकार प्रधान भाषा है उसी तरह डिंगल भी डकार प्रधान भाषा है।[1]—श्रीगजराज ओझा।

समीक्षा—यह मत भी निराधार है। डिंगल की दो-चार कविताओं में 'ड' वर्ण की प्रचुरता देखकर उसे इसकी विशेषता बतलाना और उसी बुनियाद पर इसका डिंगल नाम पड़ने की क्लिष्ट-कल्पना करना सिवा हेत्वाभास के और कुछ नहीं है। भारतवर्ष में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं, पर अभीतक कहीं भी ऐसा सुनने में नहीं आया कि अमुक अक्षर की प्रधानता के कारण अमुक भाषा का अमुक नाम पड़ा। बिहारी भाषा में लकार की प्रधानता है और होगी। पर इससे क्या हुआ? इसका असर

१ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १४, पृ० १२२.

उसके नामकरण पर तो कुछ भी नहीं पड़ा यदि यही बात है तो फिर पिंगल मे 'प' वर्ण की प्रधानता होनी चाहिये, जो नहीं है। दूसरी आपत्ति इस मत को स्वीकार कर लेने मे यह है कि हमे मान लेना पडता है कि पिंगल के साम्य पर डिंगल शब्द की उत्पत्ति हुई। पिंगल की अपेक्षा डिंगल एक अधिक पुरानी भाषा है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। क्या आश्चर्य है, यदि डिंगल के साम्य पर पिंगल शब्द, व्रजभाषा के अर्थ में, प्रयुक्त होने लगा हो? पृथ्वीराजरासो को तो जाने दीजिये। वह तो एक जाली ग्रंथ समझा जाता है। पर नीचे लिखी प्राचीन कविताओं को देखिये। इनमे 'ड' वर्ण की प्रधानता कहाँ है?—

(१) दुनियां जोड़ी दोय, सारस नैं चकवो सुण्यांह।
मिल्यौ न तीजो मोय, जो जो हारी जेठवा॥
जिण बिन घड़ी न जाय, जमवारो किम जावसी।
बिलखतड़ी बीहाय, जोगण करगो जेठवा॥

—ऊजळी (सं० ११००)

(२) हंस-गाहणी मिगलोचनि नार।
सीस समारइ दिन गिणइ॥
जिण सिरजइ उळिगण घर नारि।
जाइ दिहाड़ाउ झूरिताँ॥

वीसलदेव रासो (सं० १२१२)

(३) पिंधउ दिढ़ संणाह वाह-उप्पर पक्खर दइ।
बंधु समदि रण धसउ सामि हम्मीर वअण लइ॥
उड्डल णह-पह भमउ खग्ग रिउ सीसहि झल्लउ।
पक्खर पक्खर ठिल्लि पिल्लि पव्वअ उप्फालउ॥
हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ कोहाणल मुह मह जलउ।
सुलितान सीस करवाल दइ तेज्जि कलेवर दिअ चलउ॥

—जज्जल (सं० १३५०)

(४) वधवाणी ब्रह्माणी कोमारी सरसत्ति।
कीरत रिणमल नू करूँ, देयी देहि समत्ति॥
पौर दिखावे प्राण, गढ़ भेलै भेलै गिरै।
सामहियो सुरत्ताण, गुहिलोतां चडियो गळै॥

—गाडण पसाइत (सं० १४६०)

(५) प्रभू भजंतां प्राणियाँ, कीजै ढील न काय।
भर वत्थां अथ काढजै, मन्दिर जळतै माँय॥
जीह भणै भण जीह भण, कंठ भणै भण कंठ।
मो मन लागो महमहण, हीर पटोळै गंठ॥

—ईश्वरदास (सं० १५९५)

चौथा मत—डिंगल, डिंग+गल से बना है। डिम का अर्थ डमरु की ध्वनि तथा गल का गले से तात्पर्य है। डमरू की ध्वनि रणचण्डी का आह्वान करती है तथा वह वीरों को उत्साहित करनेवाली है। डमरु वीर रस के देवता महादेव का बाजा है। गले से जो कविता निकल कर डिम् डिम् की तरह वीरों के हृदयों को उत्साह से भर दे उसी को डिंगल कहते हैं। डिंगल-भाषा में इस तरह की कविता की प्रधानता है। इसलिये वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई।[1]—पुरुषोत्तमदास स्वामी।

समीक्षा—महादेव को वीररस का देवता और डमरु की ध्वनि को को उत्साहवर्धक मान कर इस मत की कल्पना की गई है। पर न तो महादेव वीररस के देवता ही हैं और न डमरू की ध्वनि कहीं उत्साह वर्द्धक मानी गई है। वीररस के देवता महादेव नहीं, इन्द्र हैं।[2] महादेव तो रौद्ररस के अधिष्ठाता हैं। फिर डमरू की ध्वनि की भाँति उत्साह वर्द्धक और गले से निकली हुई कविता का गँठबंधन तो बिल्कुल ही युक्ति-शून्य और हास्यास्पद है। अतएव इस मत का निराधार होना स्पष्ट सिद्ध है।

उपरोक्त मतों के सिवा भी डिंगल शब्द की उत्पत्ति के विषय में दो चार मत और प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ, कुछ लोग 'डिंगल' को डिंभ+गल से बना हुआ मानते हैं और डिंभ का अर्थ बालक तथा गल का अर्थ गला लेकर 'डिंगल' का अर्थ करते हैं—बालक को भाषा। जैसे प्राकृत किसी समय बाल भाषा कहलाती थी उसी तरह राजस्थान की यह काव्य-भाषा भी डिंभगल या डिंगळ कहलाई। इसके विपरीत कुछ दूसरे लोग डिंगलकी उत्पत्ति डिग्गी और गल से बतलाते हैं। डिंगल के प्रसिद्ध विद्वान् पं० रामकर्ण जी आसोपा का कथन है कि डिंगल शब्द की कल्पना पिंगल शब्द की समकक्षता में की गई

१ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १४, पृ० २२४.
२ महाराज प्रतापनारायण सिंह; रस कुसुमाकर, पृ० १६३.

है।[१] डिंगल शब्द रूढ़ प्रतीत होता है। डिंगल शब्द का मूलभूत धातु 'डंगि' गत्यर्थक है स्वर्गीय ठाकुर किशोर सिंह जी बारहठ ने डिंगल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'डीङ्' धातु से मानी है। बाबू श्यामसुन्दर दास जी का कहना है कि जो लोग ब्रजभाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी; और उससे भेद करने के लिये मारवाडी भाषा का उसी की ध्वनि पर गढा हुआ डिंगल नाम पड़ा। इसी तरह दो-एक और साहित्य-ऐतिहासिकों ने भी इस विषय पर अपने विचार प्रकट किये हैं। पर वास्तविक तथ्य पर पहुँचने मे सहायता उनसे भी नहीं मिलती और इसलिये इस विषय में अब अधिक कुछ कहना वृथा है।

लेकिन, बात है बहुत साधारण। सभी मानते हैं कि प्रारभ मे डिंगल एक तरह से चारण-भाटों ही की भाषा थी और अपनी काव्य-रचनाएँ ये लोग बहुधा इसी भाषा में किया करते थे। इसके साथ ही साथ यह भी सभी पर विदित है कि अपने आश्रय दाताओं के कार्य-कलापों का, उनके शौर्य-पराक्रम का ये लोग बहुत बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया करते थे[२]। धन के लोभ से कायर को शूर, कुरूप को सुन्दर, मूर्ख को पडित और कृपण को दानी कह देना इनके लिये एक साधारण बात थी। सत्या-सत्य के यथार्थ निरूपण की अपेक्षा हाँ हुजूरी द्वारा अपने स्वामियों को खुश करके उनसे अपना स्वार्थ साधने की ओर इनका ध्यान विशेष रहता था। कारण, कविता उनकी जीविका हो तो ठहरी! अतएव उनके वर्णन अधिकाश मे अत्युक्ति पूर्ण हुआ करते थे। अर्थात् वे डींग हाँका करते थे। इसलिये जो भाषा इस प्रकार डींग हाँकने के काम मे लाई जाती थी उसका शीतल, श्यामल आदि शब्दों के अनुकरण पर लोगोंने, सभवत. श्रोताओं ने, डींगल (डींग से युक्त) नाम रख दिया जिसका

१ एकदश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का विवरण; भाग दूसरा, पृ० १७.

२ In the magniloquent strains of a Charana every thing takes a gigantic form, as if he, was seeing the world through a magnifying glass; every skirmish becomes a Mahabharata. every little hamlet a Lanka, every warrior a giant who with his arms upholds the sky.

—Dr L. P. Tessitori,

परिमार्जित रूप कहिये अथवा विकृत रूप, यह आधुनिक शब्द डिंगल है। राजस्थान में वृद्ध चारण-भाट आज भी डिंगल न कहकर डींगळ ही बोलते हैं। इस तरह से बने हुए-दो-एक शब्द और भी डिंगल भाषा में मिलते हैं: जैसे—"अकबरिये इक बार दागल की सारी दुनी"—दुरसाजी। यह 'दागल' शब्द दाग+लसे बना है और इसका अर्थ है—दाग से युक्त, दागवाला। हिन्दी में भी बहुत से ऐसे शब्द पाये जाते हैं जिनकी उत्पत्ति कुछ कुछ इसी प्रकार से हुई है, यथा—बोझिल, धूमिल इत्यादि।

सर्व साधारण की रोजमर्रा की भाषा की अपेक्षा यह भाषा (डिंगल) जिसमें कविगण अपनी कविताएँ लिखा करते थे कुछ कठिन भी होती थी। अतएव अत्युक्ति के भाव के अतिरिक्त भाषा काठिन्य का भाव भी इस 'डिंगल' शब्द में निहित है और जिस तरह 'प्राकृत' और संस्कृत नामों से ही इन भाषाओं के क्रमशः प्राकृतिक (Natural) और परमार्जित (Polished) होने का भाव प्रकट होता है उसी तरह 'डिंगल' शब्द से भी अत्युक्ति और कठिनता के भाव का बोध होता है।

(२) डिंगल भाषा का संक्षिप्त व्याकरण

किसी भी देश की भाषा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसके व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक होता है। विना व्याकरण-ज्ञान के न तो उस भाषा के साहित्य मे ठीक तरह से पैठ हो सकती है और न उसके उच्चारण, स्वराघात, वर्तनी (Spelling) इत्यादि की विशेषताओं का पता लग सकता है। व्याकरण भाषा को संगठित करता तथा उसके रूप को व्यवस्थित बनाता है जिससे उसके गौरव एवं सौन्दर्य दोनों की वृद्धि होती है और उसकी आयु भी बढती है। लेकिन फिर भी स्मरण रखना चाहिये कि पहले भाषा बनती है और व्याकरण के नियम बाद में निश्चित होते हैं। इसलिये व्याकरण की पहुँच की भी सीमा है। इसके सिवा भाषा एक ऐसी चीज है जो बराबर विकसित होती है और कभी व्याकरण की बेड़िया को मानती और कभी तुड़ाकर स्वतंत्र हो जाती है। ऐसी दशा में व्याकरण अधिक से अधिक एक भाषा के शुद्ध रूप की परिभाषा कर सकता है, उसे निर्धारित नहीं कर सकता। अतएव आगे डिंगल भाषा का जो सक्षिप्त व्याकरण दिया जाता है वह सिर्फ इस अभिप्राय से कि इससे पाठकों को डिंगल व्याकरण सम्बन्धी

मोटी मोटी बातों का ज्ञान हो जाय। लेकिन जो लोग इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक हो उन्हे चाहिए कि वे पृथ्वीराज, ईश्वरदास, सूर्यमल आदि डिंगल के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों के ग्रथो का अध्ययन करे। इससे उन्हे डिंगल साहित्य की गहनता, उसके सौन्दर्य एव सजीवता का पता भी लग जायगा और डिंगल व्याकरण विषयक बहुत सी नई बाते भी मालूम होगी।

(१) उच्चारण :—

(अ) डिंगल में 'ल' का उच्चारण कहीं 'ल' और कहीं वैदिक भाषा के 'ळ' की भाँति मूर्धन्य होता है। आजकल बहुत से विद्वानो मे 'ळ' के स्थान पर 'ल' लिखने की प्रवृत्ति देखी जाती है। पर भाषा-शुद्धता की दृष्टि से यह गलत है। यह 'ळ' जब किसी शब्द के बीच मे आता है तब उसके स्थान पर 'ल' लिख देने से उसके अर्थ मे कोई विशेष अतर नहीं पड़ता। पर बहुत से ळकारान्त शब्द ऐसे हैं जिनको लकारान्त कर देने से उनका अर्थ बदल जाता है। इस तरह के शब्दों के थोडे से उदाहरण देखिये :—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
खाळ	पनाला	खाल	चमड़ा
गोळ	गुड़	गोल	वृत्ताकार
माळी	जाति विशेष	माली	धन सम्बन्धी
काळ	मृत्यु	काल	कल, दूसरा दिन
कुळ	वश	कुल	सब, तमाम
पोळ	दरवाजा	पोल	अंधेर, खोखलापन
गाळ	गाली,दुर्वचन	गाल	कपोल
भाळ	शिकार की खोज	भाल	ललाट
चंचळ	घोड़ा	चचल	चपल

(आ०) डिंगल की वर्णमाला मे तालव्य 'श' और मूर्द्धन्य 'ष' नहीं है। 'ष' का प्रयोग 'ख' के रूप में होता है। लिखने में तालव्य 'श' के स्थान पर भी दन्त्य 'स' ही लिखा जाता है; पर बोलते वक्त जहाँ जिस शकार अथवा सकार की आवश्यकता होती है, वहाँ वही बोला जाता है, जैसे :—

देखे अकबर दूर, घेरौ दे दुसमण घडा।
सांगाहर रण सूर, पैर न खिसै प्रतापसी॥

यह दोहा लिखने में उपरोक्त ढंग से लिखा जायगा पर पढ़ते समय इसमें आये हुए सकारों का उच्चारण निम्नलिखित ढग में से होगा :—

देखे अकबर दूर, घेरो दे दुशमण घड़ा।
सांगाहर रणशूर, पैर न खिसे प्रतापसी ॥

(३०) डिंगल में बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका उच्चारण करते समय किसी अक्षर विशेष पर जोर पड़ता है। जोर देकर न पढने से उस शब्द का अर्थ कुछ और होता है और जोर देकर पढने से कुछ और हो जाता है। उदाहरण के लिये 'राड़' शब्द को लीजिये। इसमें 'रा' पर जोर देकर न पढने से इसका अर्थ 'लडाई' होता है और जोर देकर पढने से 'पैतृक प्रभाव' हो जाता है। इस तरह के थोड़े से और शब्द यहां दिये जाते हैं :—

वायरो=(१) हवा, (२) शून्य, विहीन
नार=(१) स्त्री (२) सिंह
नाड़ो=(१) इजारबंद (२) छोटा जलाशय
नाथ=(१) स्वामी (२) नथ-बंधन
कद=(१) ऊँचाई (२) किस समय
पीर=(१) मुसलमानों के धर्म गुरू (२) पीहर
मोड़=(१) घुमाव (२) आम्र मंजरी; सेहरा

(३१) डिंगल की वर्णमाला में ऋ, लृ और लॄ अक्षर नहीं हैं और एक ही अक्षर 'व' का उच्चारण दो तरह से होता है। उच्चारण का अंतर दिखलाने को 'व' और 'व़' कर दिया जाता है। अर्थात् एक 'व' तो वैसा ही रहने दिया जाता है और दूसरे के नीचे बिंदी लगा दी जाती है। ऐसा न करने से अनेक स्थलों पर अर्थ का अनर्थ हो जाने की सभावना रहती है; क्योंकि दोनो के अर्थमें बहुधा भिन्नता होती है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट हो जायगा कि 'व' के नीचे बिंदी न लगाने से शब्द का क्या अर्थ होता है, और बिंदी लगा देने से, उच्चारण के अनुसार, उसका अर्थ किस प्रकार बदल जाता है :—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
वचियो	बचागया	व़चियो	छोटा सा बच्चा
वची	बच गई	व़ची	बच्ची

वास	, गंध	वास	निवास, का स्थान
वळ	टेढापन	वळ	जलने का आदेश
वळती	लौटती हुई	वळती	जलती हुई
वात	हवा	वात	कहानी, किस्सा
वार	दिन, द्वार	वार	सहायतार्थ चिल्लाना

(२) शब्द-कोष—

डिंगल और आधुनिक हिन्दी दोनो का जन्म एक ही भाषा अपभ्रंश से हुआ है। लेकिन व्याकरण, शब्द-कोष आदि की दृष्टि से आज यदि इनकी तुलना की जाय तो दोनों में बहुत अतर दिखाई पड़ता है। इसका मुख्य कारण यह है कि साहित्य की भाषा होने से डिंगल का रूप जहाँ बहुत कुछ स्थिर हो गया है, वहाँ बोलचाल की भाषा होने के कारण हिन्दी में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है और इस परिवर्तन का सबसे अधिक प्रभाव इसके शब्द-कोष पर पड़ा है। हिन्दी पर मुसलमानी तथा यूरोपियन भाषाओं का बहुत गहरा असर पड़ा है, पर डिंगल इनके प्रभाव से बहुत कुछ वंचित रही है। साहित्य में डिंगल का सबसे अच्छा नमूना बीकानेर के प्रसिद्ध कवि पृथ्वीराज कृत 'वेलि किसन रुकमणी री' में मिलता है। यह ग्रथ मुगल सम्राट् अकबर के शासनकाल में लिखा गया था, जब कि उत्तरी भारत में मुसलमानी भाषाओं का काफ़ी प्रचार था। लेकिन यदि गणना की जाय तो 'वेलि' में भी मुश्किल से सौ पीछे पाँच शब्द अरबी-फारसी के मिलेगे। कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दी की अपेक्षा डिंगल पर विदेशी भाषाओं का रंग बहुत कम चढा है और उसके शब्द-भडार मे सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भारतीय भाषाओं के शब्दो ही की बहुलता है। अनुमानत. डिंगल मे प्रतिशत ८० शब्द संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के, ५ शब्द अरबी-फारसी आदि मुसलमानी भाषाओं के और शेष शब्द प्रांतीय हैं। इनमे से कुछ शब्द तो तत्सम रूप में आये हैं, पर अधिकांश तद्भव रूप मे आये हैं। इन प्रान्तीय शब्दो के विषय में यहाँ पर इतना और भी जान लेना ठीक होगा कि इसमें से बहुत से शब्द ऐसे भी हैं जिनके पर्यायवाची शब्द हिन्दी मे नही मिलते। अतः हिन्दी की व्यापकता, लोक-प्रियता और अभिव्यजना-शक्ति को बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि इन शब्दों को हिन्दी में ग्रहण किया जाय। डिंगल शब्द-कोष की उल्लिखित तीनों

श्रेणिया के शब्द से थोड़े से शब्द नमूने के तौर पर नीचे दिये जाते ह :—

(अ०) संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द :—

वन्न (प्रा० वण्ण), सिसहर (स० शशधर), चातृंगि (प्रा० चातगी), कुइरि (अप० कुअरि), खिण (अप० खण), मगळां (प्रा० मगळ), संदेसड़ा (प्रा० संदेशड़उ), नेड़ी (प्रा० णिअड़), निसह (स० निशा), पारावत (सं०), निसद्द (प्रा० णिसद्द), सेरियाँ (अप० सेरी), मल्ल (स० शल्य) अपछर (सं० अप्सरा), डूगरिया (अप० डूग्गर), ओळंबा (सं० उपालम्भ), मुसाण (अप० मसाण) वयण (अप० वअण), केहर (स० केसरी), मोरत (स० मुहूर्त) अरक्क (सं० अर्क), केवाण (स० कृपाण), सीह (सं० सिंह), मयमत (स० मदमत्त), सादूळो (सं० शार्दूल), समाथ (सं० समर्थ), रुहर (स० रुधिर), मछर (स० मत्सर), पारख (सं० परीक्षा), दुज (स० द्विज), कोयनल (सं० कोपानल), पिसण (स० पिशुन), अखोण (सं० अक्षौहिणी), सोहिल (प्रा० सुलह), कुण (अप० कउण), किमाड़ (अप० किवोंड़), नयणे (अप० नयणहि), काज (अप० कज्ज), सहरी (प्रा० भरिसी), वाबहियड (अप० बप्पीहा), दणयर (स० दिनकर) ।

(आ०) अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द :—

ढोल (अ० दुहल), अमले (अ० अमल), कमाण (फा० कमान), विडाणा (फ़ा० बेग़ाना), मखमल (अ०), नफो (अ० नफा), इखलास (अ० इखलास), लानत (फा०), मुतलब (अ० मतलब), मुसकल (अ० मुश्किल), आद (फा० याद), हिकमत (अ०), गरज (अ० गरज), नुकसाण (अ० नुक़सान), आखर (फा० आखिर), नूर (अ०) हुनर (फा० हुनर), गुन्हो (फा० गुनाह), जरदी (फा० जर्द), आसक (अ० आशिक), मोजात (अ० मुहताज), पतसाह (फा० पादशाह), काफर (अ० काफिर), कोम (अ० कौम), हाजर (अ० हाजिर), कावू (तु०), बगतर (फा० बख्तर), तोप (तु०), मसत (फा० मस्त), कागळ (अ० कागज), निहाल (फा०), अजब (अ० अजीब) मोज (अ० मौज), मसीत (फा० मसजिद), मुळक (अ० मुल्क), इतवार (अ० एतवार, सिलह (अ०), गरकाव (अ०), रासि (अ० रास) दुवा (अ० दुआ), गोलो (अ० गुलाम), अरज्ज (अ० अर्ज़), दौलती (अ० दौलत)

हसम (अ० हशम), महल (अ०), इनाम (अ०), कुसामद (फा० खुशामद), आब (फा०), फसाद (अ०)

(इ०) प्रान्तीय शब्द :—

भाठो = पत्थर । गडक = कुत्ता । नाड़ो = छोटा जलाशय । ढोलो = पति । डींभू = बर्रे । कदर = तलवार । फिट = धिक्कार । रूक = खड्ग । डांकी = वीर । वादीलो = हठी (पति) । दाटक = हृष्ट-पुष्ट । वाहळो = बरसातीनाला । वेह = मंगल कलश । पाधर = समथल । पाधरा = अनुकूल । बुवौ = चला । उरसाह = आकाश । टीपणो = पञ्चाङ्ग । रावत = योद्धा । जरद = कवच । थह = गुफा । ढिगलो = ढेर । माट्ू = मनुष्य । डाच = मुख । छरा = पजा । हेलो = पुकार । थावर = शनिवार । लडा लू = पत्र, पुष्प आदि से सघन । पलोत = मैला, नीच । खॉखळ = आँधी । फाल = छलांग । कॉकड़ = जगल । कांकळ = युद्ध । आटी = वेणी । पगी = कीर्ति । नाणो = रुपया । चाड़ = बुराई । ओले = शरण मे । वेंडो = पागल । लंकाळ = सिंह । वासे = पीछे; सॉंवठो = मजबूत ।

(३) कारक, विभक्ति :—

डिंगल में विभक्तियों की दशा बड़ी विचित्र और गड़बड़ है । कुछ विभक्तियाँ तो ऐसी हैं जो दो-दो तीन-तीन कारकों में लगती हैं और कुछ एक ही कारक मे । इसके सिवा कुछ विभाक्तियाॅ ऐसी भी हैं जो डिंगल के प्राचीन ग्रंथो मे तो देखने मे आती हैं, पर अर्वाचीन डिंगल मे उनका स्थान दूसरी विभक्तियों ने ले लिया है । उदाहरणार्थ, प्राचीन डिंगल में सम्बन्ध की विभक्ति 'ह' है, पर अब इसका प्रयोग नहीं होता । प्राचीन डिंगल में सम्बन्ध कारक के बहुवचन में 'हा' का प्रयोग मिलता है, पर आजकल इसका काम 'ऑ' से लिया जाता है, जैसे,—डेडरॉं, अहिरॉं आदि । डिंगल की अन्य विभक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

कारक	विभक्ति	उदाहरण
कर्ता	इ, उ[1]	ढोलइ, करहउ ।
कर्म	उ[1]	सदेशडउ, कळेनउ ।

१ यह 'उ' विभक्ति इन दोनों कारकों के पुल्लिंग शब्द के एकवचन में लगती है । डिंगल मे स्त्रीलिंग शब्द कर्त्ता तथा कर्म कारकों में प्राय: इकारान्त तथा आकारान्त होते हैं । कर्त्ता कारक के पुल्लिग के बहुवचन मे बहुधा 'आ' और कर्म के बहुवचन में बहुधा दोनों लिंगों में 'ऑं' या 'याँ' होता है ।

करण	इ, इइ, (बहु०)	मुखि, कामिइ, हाथे, पाने
संप्रदान	ए,नूँ, औं	घरे, राजानूँ, अहाँ।
अपादान	हूँ, हूँत, हुँतो, हुँती, हुँता	गळा हुँता, खुसी हूँत आदि।
सम्बन्ध	ह, हा (बहुवचन)	हलाह, भवोह, करहा।
अधिकरण	इ, ए (बहुवचन)	गिरि, मगि, निमाणे।

उपरोक्त विभक्तियों के अलावा डिंगल में कुछ शब्द या शब्दांश ऐसे मिलते हैं जो विभक्तियों का काम देते हैं, पर जो न तो विभक्तियाँ कहे जा सकते हैं और न प्रत्यय की श्रेणी में आते हैं। इनको परसर्ग (Post Positions) की संज्ञा दी गई है। इनके प्रयोगों के अनुसार इनका वर्गीकरण इस तरह किया गया है :—

कर्म—नइ, प्रति, रहइ।

करण—करि, नइ, पाहि, साथि, सिउँ, सूँ।

सम्प्रदान—कन्हइ, नै, प्रति।

अपादान—कन्हइ, तउ, थउ, थकउ, थकि, पासइ, लगि।

सम्बन्ध—केरउ, तणउ, चा, ची, चो, नउ, रउ, रहइ।

अधिकरण—कन्हइ, ताँइ, पासइ, माँझळ, मझारी, माझि, माँ, माहि।[1]

(४) **सर्वनाम**—डिंगल में सर्वनाम शब्दों के रूप बहुत कुछ अपभ्रंश के सर्वनाम शब्दों के रूप से मिलते-जुलते हैं। भिन्न भिन्न सर्वनामों के रूप नीचे दिये जाते हैं :—

(अ०) अपत्यवाचक सर्वनाम

हूँ = मैं

कर्ता—हूँ, महँ, म्हे

कर्म—हूँ, मूँ, मूझ, अम्ह

सम्बन्ध—मूझ, माहरो, अम्हीणो, म्हारउ, मो, मू

अधिकरण—अम्हा

तूँ = तू

कर्ता—तुम्ह, तुम्हा, तूँ

कर्म—तुम्ह, तुम्हा

करण—तुम्हाँ सूँ

अधिकरण—तूझ, ताहरा, तुम्हीणा

(आ०) निश्चयवाचक सर्वनाम

---

१ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १४, पृ० १४९.

यह

कर्ता—एह, ए, आ

कर्म—एह, ए, आ

करण—एणइ, इण, इणिन, एणि

सम्प्रदान—एहँ, इहँ, अहाँ

अपादान—एह, ए

सम्बन्ध—एह, ए

अधिकरण—एहि, एणइ, इणन, इणि एणि

(इ०) सम्बन्धवाचक सर्वनाम

जो

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	जो, जु, जा	जे, जेअ ।
कर्म	,,	जेहु
करण	जेणइ, जिणइ, जेणिन, जिणि	जेहि
सम्प्रदान	जा, जिहिं, जउ, जू	जेणि, जिणि, जे, जिअँ, जिय
अपादान	जास, जस, जेह, जिह, जे	
सम्बन्ध	,,	
अधिकरण	जहिँ, जिहिँ, जेणइ, जिणइँ, जेणि, जिणि	

सो

	एक वचन	बहुवन
कर्ता	सोइ, सोय, सु, सा	ते
कर्म	,,	तेह
करण	तिणइ	तेहि, तेइ
सम्प्रदान	ता, तहँ, तउ, तू	तेह, तिह, तेहँ, ते, तिअँ, तियँ
अपादान	तास, तस, तसु, तह, तेह, ते	,,
संबन्ध	,,	
अधिकरण	तहि, ताहिं, तेणइ, तिणइ, तेणि, तिणि	

(ई०) प्रश्नवाचक और अनिश्चयवाचक सर्वनाम

कौन, कोई

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	कावण, कउँण, कुँण, कुण	केइ, केवि
कर्म	को, कोई, कोट, कोवि, कोय, काई	केइ
करण	कउणई, कुणइँ, किणइँ, कणि	कुणि
सम्प्रदान	क, किहँ	केहि, कंट
अपादान	कइ, किण, केन, काह	केहँ, केह, किय
सम्बन्ध	कुणह	,,
अधिकरण	कुणइँ, कणि, कायईं, किण	

(उ०) सार्वनामिक विशेषणः —

एतउ, एतलउ = इतना। जेतउ, जेतलउ = जितना। तेतउ, तेतलउ = तितना। केतउ, केतलउ = कितना। एवड़उ, इसउ, अइसउ, एहडउ = ऐसा। जेवड़उ, जिसउ, जेहड़उ = जैसा। तेवड़उ, तिसउ, तेहडउ = तैसा। केवड़उ, किसउ, केहड़उ = कैसा। आपणउ = अपना। सो = समान। सगळउ = सब। किउँ = कुछ। के = कई। कोई = क्या, कुछ।

(५) अव्ययः—

पुणि = फिर। तई = तब। जई = जब, यदि। वळे, वळी = फिर। किरि = मानो। अने, ने = और। किम, केम = कैसे। इहाँ = यहाँ। परि = ज्यों, समान। जाणे, जाणि = मानो। तिणि = इसलिये। केड़इ = पीछे। पासि = पीछे। कारणि = लिये। तदि = तब। इ = ही। साम्हं = सामने। तिम = तैसे। नहु = नहीं। स = कुत्र = कहा। किसू = कैसे। केथि = कहाँ। ऐथि = यहाँ। पिण = भी। तोइ = तो भी। तळे = नीचे।

(६) क्रियाएँ:—डिंगल में क्रियाओं के रूप कहीं अपभ्रंश, कहीं पश्चिमी हिन्दी और गुजराती के रूप से मिलते हैं। बोलचाल की राजस्थानी से भी इनकी काफी समानता है।

वर्तमान काल

(अ०) हिन्दी मे वर्तमानकालिक क्रिया के साथ जिस अर्थ मे 'है' का प्रयोग होता है उसी अर्थ में डिंगल में बहुधा 'छइ' काम आता है। इसके रूप तीनों पुरुषों मे इस प्रकार होते हैं :—

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष,	छू	छा
मध्यम पुरुष,	अछइ, छइ	छउ
अन्य पुरुष,	अछइ, छइ	छइ, अछइ

(आ०) अपभ्रंश की तरह डिंगल में भी वर्तमानकालिक क्रियापद-बहुधा इकारान्त होते हैं, जैसे :—

भरइ पलट्टइ भी भरइ, भी भरि भी पळटेहि ।
ढाढी हाथ सदेसडो धण बिललती देहि ॥

सामान्य भूत—

(अ०) डिंगल में मूल क्रिया के पीछे 'इउ', 'यउ' तथा 'इउ' लगाकर सामान्यभूत काल के रूप बनाये जाते हैं, यथा—कहिउ (कहा), उडिउ (उड़ा) आदि ।

(आ०) कहीं कहीं 'इअउ' तथा 'ठउ' प्रत्यय का प्रयोग भी मिलता है, जैसे—पूजियउ, (पूजा), दीठउ (देखा) आदि ।

भविष्यत् काल—

भविष्यत काल के रूप डिंगल में दो तरह से बनाये जाते हैं—(१) मूलक्रिया के अंत में 'सी' 'स्यू' तथा 'स्याँ' लगा कर (२) 'ला' 'ली' तथा 'लो' लगा कर, जैसे—रहसी (रहेगा)' रहस्यूँ (रहूँगा), मिलस्याँ (मिलेंगे), बूडेला (डूब जायगा), बूडेली (डूब जायगी) इत्यादि ।

पूर्वकालिकक्रिया—

डिंगल में क्रिया के अंत में 'एवि', 'एविय', 'इ', 'ई', 'अ', 'य', 'नइ', 'करि' आदि प्रत्यय लगाकर पूर्वकालिक के रूप बनाये जाते हैं, जैसे—पणमेवि, पणमेविय, लइ, पालिअ, बहिय, करीनइ, दौड़िकरि आदि ।

(३) डिंगल कविता का ऐतिहासिक और साहित्यिक मूल्य

ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच का रचा हुआ डिंगल काव्य बहुत थोड़ी मात्रा में मिलता है और जो है वह भी बहुत संदिग्ध और साधारण कोटि का । डिंगल कविता का वास्तविक इतिहास उस समय से प्रारंभ होता है जब राजस्थान पर मुसलमानों के आक्रमण होने लग गये थे और देश को संकट से बचाने के लिये यहाँ के राजा-महाराजाओं

को धन-जन का भारी बलिदान करना पड़ रहा था। यह एक भीषण हलचल तथा घोर अशान्ति का युग था और अपने देश, अपनी स्वतन्त्रता एवं अपने धर्म की रक्षा के हेतु उन्हें अहर्निश कमर कसकर तैयार रहना पड़ता था। इसके लिये उन्हें सैन्यबल तथा शस्त्र-बल के अतिरिक्त कवियों की भी आवश्यकता रहती थी जो अपनी ओजस्विनी वाणी एवं वीर-रस पूर्ण कविताओं द्वारा योद्धाओं को प्रोत्साहित कर उनमें देश के नाम पर पतंगों की तरह मर मिटने का साहस भर देते थे। यह काम उस समय चारण और भाट जाति के लोग करते थे।

उच्चकोटि के कवि एवं विद्वान होने के साथ साथ ये चारण-भाट तलवार के भी धनी होते थे और आवश्यकता पड़ने पर रणांगण में उतर कर शत्रुओं से लोहा भी ले सकते थे। चंदबरदाई, दुरसाजी आदि कवि इसी श्रेणी के थे। द्रव्य, जागीर, प्रतिष्ठा इत्यादि के लोभ से ये लोग काव्य कला कौशल की प्राप्ति के लिये शिक्षा और अभ्यास में बहुत समय बिताते थे और संस्कृत, प्राकृत आदि कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। इस परिश्रम का फल भी प्रायः उन्हें बहुत अच्छा मिलता था। अपना और अपने पूर्वजों का यश फैलाने वाले समझ कर राजा-महाराजा उन्हें लाख पसाव, कोड़ पसाव आदि के रूप में अतुल धन दान देते और कविराजा, कवीश्वर आदि की उपाधियों से विभूषित कर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाते थे।[1] प्रसिद्ध है कि आमेर के राजा मानसिंह ने छह कोड पसाव, बीकानेर के महाराजा रायसिंह ने सवातीन कोड़ पसाव, सिरोही के राव सुरताण सिंह ने एक कोड़ पसाव और मारवाड़ के महाराजा गजसिंह ने चौदह लाख पसाव दिये थे। अजमेर के राजा बछराज गौड़ ने तो कई अरब पसाव तक भी दान में दिये थे। निम्न लिखित प्राचीन दोहा, इस बात का साक्षी है :—

---

१ राजस्थान में चारण-भाटों को जो दान दिया जाता है उसका नाम उन्होंने पसाव (सं० प्रसाद) रखा है। बड़े दान को वे अत्युक्ति से लाख पसाव, कोड़ पसाव आदि कहते हैं। इस तरह के दान देने की प्रथा आज कल बंद सी हो गई। पहले जब लाख पसाव आदि दिये जाते थे तब एक लाख रुपया नकद नहीं दिया जाता था। हजार-दो हजार के करीब रोकड़ रुपया देकर शेष रकम की पूर्त्ति हाथी, घोडे, सिरोपाव आदि देकर की जाती थी। छोटा दान

देतां अरब पसाव नित, धिनो गोड़ वछराज।
गढ़ अजमेर सुमेर सूँ, ऊँचो दीसै आज॥

इतना ही नहीं, इन राजा-महाराजाओं की वजह से ये चारण-भाट बाद में अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ इत्यादि मुसलमान बादशाहों के राज दरबारों में भी पहुँच गये थे और वहाँ भी इनका बड़ा सम्मान होता था। इनमें से दुरसा जी आढा, लक्खा जी बारहठ, पीरजी आसिया आदि को तो उक्त बादशाहों की ओर से बड़े बड़े पुरस्कार और मनसब भी प्राप्त हुए थे।

अपने आश्रयदाताओं के शौर्य्य-पराक्रम के वर्णन में इन कवियों ने 'रासो' 'ख्यात' आदि के नाम से सैकड़ों ग्रथों की रचना की जिनमें से अधिकांश तो काल-कवलित हो गये और थोडे बहुत जो बच रहे हैं उनकी रक्षा की भी कोई सतोष जनक-सुव्यवस्था अभी तक नहीं हो सकी है। फुटकर गीत, दोहा, कवित्त आदि तो इतनी प्रचुर मात्रा मे नष्ट हो गये हैं और फिर भी इतनी बड़ी सख्या में उपलब्ध होते हैं कि जिसका अनुमान लगाना ही हमारे लिये असभव है।

प्रारंभ में डिंगल काव्य-रचना पर चारण-भाटो ही का एकाधिकार था और ये लोग अपने आश्रयदाताओं के कीर्ति-कथन को ही अपनी कविता का चरम उद्देश्य समझते थे। लेकिन बाद में जब डिंगल भाषा का सम्मान बढा तब मोतीसर, ढाढी, ब्राह्मण, राजपूत, सेवग आदि अन्य जातियों के लोग भी इसमें कविता करने लगे और इसकी विषय-सामग्री मे भी परिवर्तन होना शुरू हुआ। धीरे धीरे इसमें ज्योतिष, वेदान्त, वैद्यक, धर्म, नीति, शालिहोत्र आदि अनेक विषयों पर बहुत से ग्रथ लिखे गये जिनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो संसार के किसी भी साहित्य को गौरव प्रदान कर सकते हैं।

चारण-भाटो की लिखी हुई उपरोक्त वीर गाथाओं के विषय मे यहाँ पर इतना सा और भी बतला देना ठीक होगा कि ये लोग अपने जिन आश्रयदाताओं की प्रशसा में ग्रथ लिखते थे, प्राय: उनके समसामयिक हुआ करते थे और बहुधा आपबीती तथा आँखो देखी घटनाओं का चित्रण करते थे। अतएव इतिहास की दृष्टि से ये ग्रंथ बडे उपयोगी हैं। इसमे

लाख पसाव, उससे बड़ा कोड पसाव और सब से बड़ा अरब पसाव कहलाता था।

सन्देह नहीं कि इनमें कहीं कहीं अतिरञ्जना से काम लिया गया है और जिस ढंग के इतिहास-ग्रंथ आजकल लिखे जाते हैं उस ढग के ये नहीं है। फिर भी ऐतिहासिक सत्य इनमें बहुत कुछ अशों में विद्यमान है और यदि कोई निष्पक्ष एवं विवेकशील इतिहासकार चाहे तो क्षत्रिय जाति का, हिन्दू-मुस्लिम सघर्ष का, सच्चा इतिहास लिखने के लिये इनमें से पर्याप्त सामग्री निकाल सकता है। इसके सिवा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी डिंगल की इन वीर गाथाओं का बड़ा महत्व है। क्योंकि सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और आधुनिक हिन्दी के बीच का सबंध इसी डिंगल भाषा के द्वारा स्थापित होता है।

विशुद्ध काव्य की दृष्टि से इस विशाल डिंगल साहित्य का कितना मूल्य है, यह विषय भी विचारणीय है। महाकवि मम्मट ने काव्य रचना के धन प्राप्ति, यश प्राप्ति आदि छह उद्देश्य बतलाये हैं।[1] और इन्हीं उद्देश्यों को सामने रख कर डिंगल-काव्य के अधिक भाग की रचना की गई है। लेकिन कविता की कसौटी आज कल बदल गई है। पाश्चात्य विद्वान् मम्मट के उक्त आदर्शों को ठीक नहीं मानते। उनका कहना है कि धन प्राप्त करने की इच्छा से, प्रतिष्ठा के लोभ से, श्रोताओं पर प्रभाव डालने के अभिप्राय से तथा अन्य किसी प्रकार के सासारिक प्रलोभन से जो कविता की जाती है उसमें वह रस, वह चमत्कार और वह बल कदापि नहीं आ सकता जो स्वान्तः सुखाय कविता करने वाले कवियों की रचना में मिलता है।[2] पाश्चात्य विद्वानों का यह कथन बहुत कुछ ठीक भी है; और शायद यही कारण है कि इन राजाश्रित कवियों की कविता में आत्मानुभूति और आत्म-विस्मृति की वह अक्षय-छाप हमें नहीं दिखाई

---

१ काव्यं यशसेऽर्थकृते, व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये, कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥
—मम्मट

२ When a peot tuins round and addresses himself to anothei peison, when the expression of his emotions is tinged also by that desire of making an impression upon another mind, then it ceases to be poetry and becomes eloquence.
—John Stuart Mill

पड़ती जिसके दर्शन सूर, तुलसी, मीरां आदि भक्त कवियों की कविता मे पग पग पर होते हैं। अतः इस दृष्टिकोण से चारण-काव्य का अधिकतर भाग सदोष है। निःसन्देह चारण-भाटों में भी ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने लौकिक काव्य को हेय समझ कर स्वान्तः-सुखाय रचना की है। पर ऐसे कवियों की सख्या एक तरह से न होने के बराबर है।

भाषा—डिंगल कविता की भाषा प्रधान रूप से दो प्रकार की पाई जाती है। खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो आदि वीर गाथा काल के काव्य-ग्रथों की भाषा बहुत अस्तव्यस्त, बेमेल और डिंगल व्याःकरण की दृष्टि से अशुद्ध है। इसीलिये राजस्थान के बहुत से साहित्यान्वेषक इन्हें डिंगल के ग्रथ ही नहीं मानते। लेकिन इनके बाद के ग्रथों तथा फुटकर कविताओं की भाषा बहुत शुद्ध, संयत एव प्रौढ है और इसमें व्याकरण के नियमों की अवहेलना कम की गई है। फिर भी एक बात जो डिंगल के सभी कवियो में समान रूप से पाई जाती है वह है शब्दों की मन माने ढंग से तोड़ मरोड़। एक ही शब्द को भिन्न भिन्न कवियों ने भिन्न भिन्न प्रकार से तोड़ा है और इस बुरी तरह से तोड़ा है कि आज तो उसके मूल रूप के पहचानने में भी भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कुछ उदाहरण लीजिये :—

शब्द	शुद्ध रूप
जुजठिळ	युधिष्ठिर
अछेरा	आश्चर्य
खत	क्षिति
पथ	पार्थ
वेसा	वेश्या
मेछ	म्लेच्छ
भोण	भवन
अवज	अंबुज
ढेलडी	दिल्ली
पाखर	प्रखर
मछर	मत्सर

छंद—डिंगल काव्य में सब से अधिक प्रयोग दोहा-छप्पय का हुआ है। चदवरदाई के छप्पय तो प्रसिद्ध ही हैं। इस छप्पय-पद्धति का अनु-

करण बहुत पीछे तक होता रहा और आधुनिक काल में भी उसका प्रभाव ज्यों का त्यों देखा जाता है। इसका कारण एक तो यह प्रतीत होता है कि डिंगल कविता में वीररस का प्राधान्य है जिसका निरूपण इन छंदों में अधिक सफलता के साथ हो सकता है। दूसरे, ये छंद मुक्तक और प्रबन्ध दोनों प्रकार के काव्यों के लिये उपयुक्त होते हैं। दोहा—छप्पय के अतिरिक्त अन्य छंद भी प्रयुक्त हुए हैं जिनमें मन्दाक्रान्ता, मुक्तादाम, भुजङ्ग-प्रयात, पद्धरी और तोमर मुख्य हैं। फुटकर रचनाओं में डिंगल के कवियों ने गीत छंद का प्रयोग भी बहुत किया है, जो डिंगल साहित्य की अपनी एक खास विशेषता है। ये गीत कई प्रकार के होते थे। 'रघुवरजसप्रकास' आदि डिंगल के रीति ग्रंथों में ८५ प्रकार के गीतों के लक्षण-उदाहरण मिलते हैं। इनमें से जो गीत बहुत प्रचलित रहे हैं उनके नाम ये हैं :— त्रबकड़ो, पालवणी, भापड़ी, सावभ्रड़ो, चोटीबंध, सुपखड़ो, त्रकुटबंध और छोटो साणोर। छप्पय को डिंगल में 'कवित्त' और दोहा को 'दूहो' कहते हैं। हिन्दी में दोहा छंद एक ही प्रकार का होता है पर डिंगल में इसके दूहो, सोरठियो दूहो, बड़ो दूहो और तूंवेरी दूहो चार भेद माने गये हैं। इनके लक्षण आदि का पूरा विवरण नीचे दिया जाता है :—

(१) दूहो—यह हिन्दी का दोहा है। इसके पहले और तीसरे चरण में १३-१३ मात्राएँ और दूसरे और चौथे में ११-११ मात्राएँ होती हैं। जैसे :—

तरवर कदे न फळभखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारणे, साधाँ धर्यो सरीर॥

(२) सोरठियो दूहो—यह हिन्दी का सोरठा है। डिंगल कविता का अत्यन्त लोकप्रिय छंद है। राजस्थान में राग सोरठ बहुत गाया जाता है जो इस छंद में बहुत अच्छा खिलता है। इसलिये इसका नाम 'सोरठियो दूहो' पड़ा है। कोई कोई कहते हैं कि इस भेद का प्रारंभ सब से पहले सौराष्ट्र (सोरठ देश) में हुआ तथा वहाँ के कवि इसका विशेष प्रयोग करते थे इसलिये इसका यह नाम पड़ा।[1] जो हो, यह छंद वीर, शृंगार और करुण रस के वर्णन के लिये बहुत उपयुक्त है और डिंगल के कवियों ने इसकी प्रशंसा भी बहुत की है :—

---

१ श्री नरोत्तमदास स्वामी; राजस्थान रा दूहा, पृ० ४७।

सोरठियो दूहो भलो' कपड़ो भलो सपेत।
ठाकरियो दाता भलो, घुडलो भलो कमेत ॥
सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवण री वात।
जोबण छाई धण भली, तारां छाई रात ॥[1]

यह छद दूहे का बिल्कुल उलटा होता है। इसके पहले और तीसरे चरण में ११—११ मात्राएँ और दूसरे और चौथे चरण में १३—१३ मात्राएँ होती हैं। यथा :—

अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ो तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसी ॥

(३) बड़ो दूहो—इसके पहले और चौथे चरण में ११—११ मात्राएँ तथा दूसरे और तीसरे में १३—१३ मात्राएँ होती हैं। जैसेः—

रोपी अकबर राड़, कोट झड़ै नह कांगरे।
पटके हाथळ सीह पण, वादळ ह्वै न बिगाड़ ॥

(४) तूवेरी दूहो—यह बड़े दूहे का उलटा होता है। इसके पहले और चौथे चरण में १३—१३ मात्राएँ तथा दूसरे और तीसरे चरण में ११—११ मात्राएँ होती हैं। जैसे :—

ऊभी सूरिज साँमुही, माथा धोए मेटि।
ताह उपन्नी पेटि, मोहण वेली मारुई ॥

अलंकार—डिंगल कविता अधिकतः वर्णनात्मक और भाव प्रधान कविता है। अतएव डिंगल के कवियों ने ऐसे अलङ्कारो का प्रयोग विशेष रूप से किया है जो वर्ण्य विषय की सजीवता एव भाव व्यंजना को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इनकी फुटकर रचनाओं मे अलकारों का प्रदर्शन कम देखा जाता है। लेकिन क्रमबद्ध ग्रंथों में जहाँ सौन्दर्य-वर्णन, सैन्य-वर्णन तथा युद्धवर्णन करने की आवश्यकता हुई है वहाँ इन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सादृश्य मूलक अलकारों का प्रयोग किया है, पर बड़े सयम साथ। अलकारों के फेर में पड़कर भाव को भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति डिंगल कवियों में कहीं भी नहीं दिखाई पढ़ती। पृथ्वीराज, बाकीदास आदि दो-एक कवि

---

१ सपेत = सफेद। घुड़लो = घोड़ा। मरवण री वात = ढोला-मारू की कथा। कमेत = कुम्मैत; घोड़े का एक रंग जो स्याही लिये लाल होता है। धण = स्त्री। ठाकरियो = ठाकुर,मालिक।

अवश्य ऐसे हुए हैं जिनका ध्यान अलकार-प्रदर्शन की ओर था। परन्तु अलंकार-प्रियता के कारण कहीं भाव सौन्दर्य्य को ठेस पहुँची हो, ऐसा इनकी कविता से भी नहीं झलकता। हाँ, एक अलङ्कार अवश्य ऐसा है जिसका प्रयोग डिंगल के कवियों ने अत्यधिक मात्रा मे किया है और वह है—वयणसगाई। इसे हम हिन्दी के शब्दानुप्रास का एक भेद कह सकते हैं। अनुप्रास की तरह इसके भी कई भेद-उपभेद हैं। वयणसगाई का साधारण नियम यह है कि किसी छद के प्रथम शब्द का आरम्भ जिस वर्ण से हुआ हो उसके अतिम शब्द का आरम भी उसी वर्ण से होना चाहिये। जैसे :—

(१) अकवर गरव न आँण, हींदू सह चाकर हुआ।
दीठो कोई दिवाँण, करतो लटका कटहड़े ॥

(२) नर जेथ निमाणा निजली नारी, अकवर गाहक वट अवट।
चौहटे तिणजायर चीतोड़ो, वेचै किम रजपूत वट ॥

डिंगल के गीति-ग्रथों मे वयणसगाई का निर्वाह न होना कोई दोष नहीं माना है। परन्तु प्राचीन कवियों ने और विशेषतः मध्यकालीन कवियों ने इसका ऐसी दृढ़ता के साथ पालन किया है कि परवर्ती कवियो के लिये यह एक काव्य-नियम सा बन गया और छोटे-बड़े सभी कवि इसके नियमों का निर्वाह करते रहे। यदि कोई कवि वायणसगाई का निर्वाह किसी स्थान पर न कर सकता तो वह काव्य दोष तो नहीं माना जाता था, पर उसकी कवित्व शक्ति की कमज़ोरी का सूचक अवश्य समझा जाता था। वशभास्कर का रचयिता सूर्यमल पहिला कवि था जिसने इस बात का अनुभव किया कि वयणसगाई का पल्ला पकड़ने से भाव के स्पष्टीकरण में कठिनता होती है और कभी कभी रसोद्रेक मे भी बाधा पहुँचती है। इसलिए उसने इस परपरागत काव्यरीति की उपेक्षा की। लेकिन अपने समकालीन कवियो के रोष का भय उसे भी था। अतः अपने रचे 'वीर सतसई' नामक ग्रथ के प्रारंभ मे निम्नाकित दोहा लिखकर उसने अपनी सफाई दी :—

वयण सगाई वाळिवाँ, पेखीजै रस पोस।
वीर हुतासण बोळ में, दीसे हेक न दोस ॥[1]

---

१ अर्थ—वयणसगाई के नियम जो जला देने से वीररस का

रस—डिंगल काव्य में वीररस का प्राधान्य है। शृङ्गार, शान्त आदि अन्य रसों का भी निरूपण मिलता है, पर अपेक्षाकृत बहुत कम। वस्तुतः डिंगल कविता का तीन चौथाई भाग वीर रस ही से ओत प्रोत है। हिन्दी में तो वीर रस का एक तरह से अभाव ही समझना चाहिये। लेकिन सस्कृत आदि अन्य भारतीय भाषाओं की वीररस की कविता के साथ भी यदि डिंगल की वीररस की कविता की तुलना की जाय तो वह अधिक उच्च कोटि की सिद्ध होगी, इसमें कोई सदेह नही। इसका कारण भी है। वह यह कि डिंगल के कवि वीरों के देश में पैदा हुए थे, वीरता के वायुमंडल में पले थे और स्वय भी वीर होते थे। इसलिये अपनी कविता में भी वे वास्तविकता का जीवन फूँक सके हैं। इसके विपरीत सस्कृत आदि के कवि रणागण की कटाकटी से कोसो दूर किसी शान्त वातावरण में रहते थे और सुनी सुनाई बातों के आधार पर वीररस के चित्र अकित करने की कोशिश करते थे जो बहुधा अस्पष्ट, अस्वाभाविक और अधूरे हुआ करते थे। कारण, उनकी अनुभूति को प्रत्यक्षानुभव का सहारा तनिक भी न होता था। अतएव योद्धा जिस समय शत्रु पर वार करता है उसकी तलवार बिजली के समान दिखाई पड़ती है, वीरगण पहाड़ी की तरह डटे हुए हैं इत्यादि ऊपरी बातो का वर्णन तो उन्होंने किया और बहुत अच्छा किया पर वीर-वीरागनाओं के हृदय के गम्भीरतर भावो का विश्लेषण उनसे न हो सका। डिंगल के कवियों ने इन मनोभावो को भी व्यक्त किया है और ऐसी सरल भाषा में इतनी सफलता के साथ कि पढ़ते ही मन मुग्ध हो जाता है।

उदाहरण देखिये :—

> धव घावाँ घकिया घणाँ, हेली आवे दीठ।
> मारगियो कक्कू वरण, लीलो रंग मजीठ ॥१॥[1]

पोषण ही दिखाई पड़ता है। उस हुतासन (अग्नि) के रंग मे दोष तो एक भी नहीं दिखाई देता।

१ हे सखी! घावों से खूब लथपथ पति आते हुए दिखाई दे रहे है। खून के गिरने से सारा रास्ता कुंकुम के वर्ण का और उनका श्वेत घोड़ा मजीठी रङ्ग का हो गया है॥१॥

पिऊ केसरियाँ पट किया, हूँ केसरियाँ चीर।
नाहक लायो चूँदड़ी, वळती वेळा वीर ॥२॥
पंथी हेक संदेसड़ो, बाबल नै कहियाह ।
जायाँ थाळ न वज्जिया, टामक टहटहियाह ॥३॥[1]

डिंगल की वीररस की कविता में एक विशेषता और भी पाई जाती है। संस्कृत के कवियों ने स्त्रियों को शृंगार रस के आश्रय-आलंबन के रूप में ही विशेषकर के ग्रहण किया है और वीररस के लिये अनुपयुक्त समझकर उनकी बड़ी उपेक्षा की है। वे दिन रात अपने चरित्रनायका के पीछे ही लगे रहे और कभी एक क्षण के लिये भी पीछे मुड़कर यह न देखा कि युद्धार्थ गये हुए वीर नायक की अनुपस्थिति में उसकी वीरपत्नी की घर पर क्या दशा है लेकिन डिंगल के कवि उन्हें न भूले। पद्मिनी के समान असंख्य वीर ललनाओं के उदाहरण सामने होते हुए वे भूलते भी कैसे? अतएव वीर क्षत्रियाणियों की मौलिक भावनाओं को भी उन्होंने अपनी रचनाओं में ला उतारा, जो विश्व साहित्य को डिंगल के कवियों की एक अपूर्व देन है। दो एक सूक्तियां देखिये। पति युद्ध में गया हुआ है। पत्नी क्या सोचती है। मनोभावों का अन्तर्द्वन्द्व देखने ही योग्य है :—

नायण आज न मांड पग, काल सुणीजै जंग।
धारां लागीजै धणी, तो दीजै वण रंग ॥१॥[2]

---

१ मेरे पति ने युद्ध में जाने के लिये केसरिया वागा पहिन लिया है और मैंने भी सती होने के लिये केसरिया रङ्ग की साड़ी ओढ़ ली है। हे भाई! ऐसे वक्त में तू व्यर्थ ही क्यों इस चूदड़ी को लेकर यहाँ आया है ॥२॥ हे पथिक! मेरा एक सन्देशा तू मेरे पिता को कह देना। जिस समय मैं पैदा हुई थी, मेरे निमित एक थाली भी नहीं बजाई गई पर इस समय जब कि मैं सती होने के लिये जा रही हूँ मेरे आगे ढोल-नगाड़े बज रहे हैं ॥३॥

२ हे नाइन! तू आज मेरे पैरों को (महावर आदि से) मत रँग। कल युद्ध सुना जाता है। यदि स्वामी मारे जायँ तो फिर (सती होने के समय) खूब रंग देना ॥ १ ॥

ऊभी गोख अवेखियौ, पेलां रो दळ सेर ।
पड़ियौ धव सुणियौ नहीं, लीधौ धण नाळेर ॥२॥
विण मरियाँ विण जीतियाँ, जो धव आवै धाम ।
पग पग चूडी पाछटूँ, तो रावत री जाम ॥३॥[1]

डिंगल काव्य में वीररस की प्रधानता देखकर कुछ लोगो ने यह निष्कर्ष निकाला है कि डिंगल भाषा वीररस के लिये जितनी उपयुक्त है उतनी शृङ्गार आदि अन्य रसों के लिये नहीं है । लेकिन उनका यह विचार भ्रमात्मक है वीररस के अतिरिक्त दूसरे रसो की भी मार्मिक कविता डिंगल में हुई है और हो सकती है । प्रमाण स्वरूप दो एक दूसरे रसों के भी नमूने आगे दिये जाते हैं ।—

शृङ्गाररस :—

बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव ।
जबही बरसइ घण घणउं, तब ही कहइ पियाव ॥

(पपीहा और विरहिणी दोनों ही का एक स्वभाव है । जब जब मेघ बरसता है तभी ये दोनो "पी आव," "पी आव" पुकारते हैं ।)

साजन आया हे सखी, ज्यां की जोती बाट ।
थाँभा नाचै, घर हँसै, खेलण लागी खाट ॥

(हे सखि ! जिन प्रीतम की प्रतीक्षा में थी, वे आज आ गये हैं । खम्भे नाच रहे हैं, घर हँस रहा है और खटिया खेलने लगी है ।)

कबरी किरि गुन्थित कुसुम करम्बित
जमुण फेण पावन्न जग ।
उतमग किरि अम्बर आधो अधि
माँग समारि कुँआर मग ॥

(फूल दे देकर गुँथी हुई (रुक्मिणी की) चोटी मानो जग को

---

१ झरोखे में खड़ी हुई वीर पत्नी ने देखा कि शत्रु-दल अधिक प्रबल है । अत. पति के धराशायी होने के समाचार सुनने के पहिले ही उसने सती होने के लिये नारियल अपने हाथ मे ले लिया ॥ २ ॥ यदि पति बिना विजयी हुये या बिना मरे घर आये तो मैं पग-पग पर चूड़ियाँ तोड-फोड़कर बिखेर दूँगी; मैं वीर राजपूत की कन्या हूँ ॥ ३ ॥

पवित्र करने वाली यमुना के फेन हैं और मस्तक के बीचो बीच सँवारी हुई माँग मानो आकाश-स्थित आकाश गङ्गा है।)

शान्तरस—

पान झड़ंता देख कर, हँसी ज कूंपळियाँह।
मो वीती तुझ वीतसी, धीरी वापड़ियाँह॥

(पत्तों को झड़ते हुए देखकर कोपलें हँसने लगीं। इस पर पत्तों ने कहा अरी बेचारियो, ठहर जाओ; जो हम पर बीती है वही तुम पर भी बीतेगी।)

यही अँगना यहि देहरी, यही ससुर को गाँव।
दुलहन-दुलहन टेरतां, बुढिया पड़ गयो नाँव॥

हास्यरस—

राजा रावण जनमियो, दस मुख एक शरीर।
जननी ने सांसो भयो, किण मुख घालूं खीर॥

(राजा रावण ने जन्म लिया। उसके शरीर एक पर मुँह दस थे। माता संशय में पड़ गई कि उसको स्तन-पान किस मुँह से कराया जाय।

मूँड मुँडायां तीन गुण, मिटी टाट की खाज।
बाबा बाज्या जगत में, मिल्यो पेट भर नाज॥

(मूँड मुँडाने से तीन लाभ होते हैं—सिर की खाज मिटती है, 'बाबा' कहलाते हैं और खाने को पेट भर नाज मिलता है।)

करुणरस—

घणाँ घाट लंघणा, नदी परवत नद नाळा।
वन है बेटा विकट, पंथ चालणों उपाळाँ॥
कहर भूख काढ़णी, गिणे दुख किसा गुणीजै।
कहूँ बात यह कँवर श्रवण, वे भ्रात सुणीजै॥
दंती वराह नाहर दनुज, सो तिण ठां रह सावता।
रे पुत्र घणी विध राखजो, जनक-सुतारा जावता॥

(कौशल्या राम और लक्ष्मण से कहती है—बहुत सी घाटियों, नदियों, पर्वतों, नालो और समुद्रों को लाँघना होगा। हे पुत्र! वन जाना बड़ा कठिन काम है और वहाँ रास्ते में बिना जूतों ही के चलना होगा। भूख बहुत सहनी होगी। कौन वहाँ के दुखों को गिन सकता है। मैं जो यह

बात कह रही हूँ वह दोनों भाई कान लगाकर सुनो। हाथी, सूअर, सिंह और राक्षस ये सब वहाँ रहते हैं। इसलिये हे पुत्र! बहुत प्रकार से सीता की इनसे रक्षा करना।)

रौद्ररस—

विळकुळियौ वदन जेम वाकारयौ
सङ्ग्रहि धनुष पुणच सर सन्धि।
क्रिसन रुकम आउध छेदण कजि
वेलखि अणी मूठि द्रिठि बन्धि॥

(रुक्मि ने ज्योंही ललकारा त्योंही (कृष्णका) मुख लाल हो गया और धनुष को लेकर तथा प्रत्यचा पर बाण चढाकर रुक्मि के शस्त्रों को, काटने के लिये श्रीकृष्ण ने बाण के फर को मुट्ठी मे और उसकी नोक को दृष्टि में बाँधा।)

वीभत्स रस—

कांपिया उर कायरां असुभकारियौ
गाजते नीसाणे गड़ड़ै।
ऊजळियाँ धाराँ ऊवड़ियौ
परनाळे जल रुहिर पड़ै॥

(नगारों की गड़गड़ाहट रूपी मेघ-गर्जन से रणभीरु रूपी अशुभचिन्तकों के हृदय काँपने लगे और शस्त्रों की चमकीली धाराओ से उमडते हुए रुधिर रूपी जल के पनाले बहने लगे।)

दोषवर्णन—काव्य के मुख्य अर्थ की प्रतीति को हानि पहुँचाने वाली वस्तु को दोष कहते हैं। डिंगल में दोष ग्यारह प्रकार के माने गये हैं। नीचे हम डिंगल के प्रसिद्ध रीति ग्रथ 'रघुवरजस-प्रकाश' से दो छप्पय उद्धृत करते हैं जिसमें सभी तरह के दोषो के नाम और उनके उदाहरण आ गये हैं :—

कहियौ मैं कै कहूँ, किसूँ अंधौ तै कहियै।
लित्ता पान धनंख, राम छवकाळो लहियै॥
अज अजेव जगईस, निमौतै हीण दोष निज।
रतनद त्रिरत कवध, सार इम चली निनंगसुज॥
कवि छंवो भंग पग कह, तुक धर लछण तोर मैं।
जत विरूध जांगड़ रो दुहौ, वणै लघु साणोर मैं॥१॥

विस्नु नाम कुल विस्नु, विस्नु सुत मित्र अपस वद ।
कच अहि सुख ससिलंक, स्यंघ कुच कोक नाळ छिद ॥
मनष्यां मत विललाय, गाय प्रभुजी पखतूटळ ।
रांमण हणियो राम, गूह[1] खाधो तारक पळ ॥
यण भांत कहै वहरो यळा, महपन मे पय राम रै।
तुक एण अमंगळ आद अंत, कवियण विधि गुण नह करै ॥[2]

(१) अंध—जहाँ उक्त विषय का निर्बाध निर्वाह न हो सके तथा किसी चरण में उक्त विषय सम्मुख और किसी मे पराङ्मुख हो वहाँ यह दोष माना जाता है। जैसे :—

" कहियो में कै कहूँ, किसूं अंधोते कहियै"

यहाँ "कहियो,, शब्द के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई बात पहले कही जा चुकी है। लेकिन बाद मे "कहूँ" आया है जिससे यह ध्वनि निकलती है कि बात अभी तक कहनी है। इसके सिवा यहाँ इस बात का भी पता नहीं लगता कि "मैं" से अभिप्राय कवि से है अथवा किसी दूसरे व्यक्ति से। फिर "किसूं', आया है जिससे यह स्पष्ट नहीं होता कि कहने वाला अपनी बात किसी के पक्ष मे कह रहा है अथवा विपक्ष मे। अतः यहाँ पर अंध दोष है।

(२) छबकाळ—विरुद्ध भाषाओं अथवा विभिन्न भाषाओं को डिंगल मे मिला देने को छबकाळ दोष कहते हैं। जैसे :—

"लित्ता पान धनंख"

इसमें 'लित्ता' शब्द पजाबी का, 'पान' हिन्दी का और 'धनख' डिंगल का है। इसलिये छबकाळ दोष है।

(३) हीन—जहाँ कोई निश्चित अर्थ न हो सके अथवा जहाँ अर्थ का अनर्थ होने की सभावना हो वहाँ यह दोष होता है। जैसे :—

"अज अजेव जगईस"

यहाँ 'अज' से कवि का अभिप्राय शिव से है अथवा ब्रह्मा से अथवा

---

१ गूह = कार्तिकस्वामी । खाधो = खाया, मारा । तारक = तारकासुर नामक राक्षस।

२ किशनजी आढ़ा; रघुवर जस प्रकास (अप्रकाशित), पृ० ६५।

विष्णु से, यह बात स्पष्ट नहीं है। क्योंकि तीनो ही अजन्मा और जगत के ईश हैं।

(४) निनंग—जहाँ क्रम भग वर्णन हो अर्थात् जो बात पहले कहने की हो उसे बाद में कही हो और जो बात बाद मे कहने की हो उसका उल्लेख पहले कर दिया गया हो, वहाँ यह दोष होता है। जैसे :—

"रत नद तिरत कबंध सार इम चली निनंग सुज"

पहले तलवारे चलती हैं, बाद में रक्त बहता है और फिर कबंध तैरते हैं। लेकिन उपरोक्त पक्ति में उलटा वर्णन किया गया है। रक्त की नदियों मे कबध पहले तैरते हैं और तलवार बाद में चलती है। अतः निनग दोष है।

(५) पागळो—पिंगल शास्त्र द्वारा निश्चित नियमो के विरुद्ध किसी छद के चरण में कम-अधिक मात्राओं का होना पॉगळो दोष कहलाता है।

(६) जात विरुद्ध—यदि किसी छद के भिन्न भिन्न चरण भिन्न भिन्न जाति के छदो के हों तो वहॉ यह दोष होता है।

(७) अपस—यदि किसी बात को सीधी तरह से न कहकर घुमा फिरा कर कहा जाय तो वहॉ यह दोष होता है। जैसे :—

"विस्नु नाम कुल विस्नु, विस्नु सुत मित्र अपस बद"

यहॉ सीधा 'रामचन्द्र' न कहकर, विस्नु नाम (हरि) हरि का नाम (सूर्य) उनका सुत (सुग्रीव) और उनका मित्र (रामचन्द्र) कहा गया है। अतः अपस दोष है।

(८) नाल छेद—काव्य-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध किसी विषय का मनमाने ढग से वर्णन करना नाल छेद दोष कहलाता है। जैसे :—

"कच अहिमुख ससि लंक स्यंघ कुच कोक नाल छिद"

यहाँ पहले चोटी का और बाद में मुख का वर्णन किया गया है जो नखशिख वर्णन की परिपाटी के खिलाफ है। इसी तरह कमर और कुच के वर्णन में भी क्रम का भग हुआ है। अतएव नाल छेद दोष है।

(९ पपतूट—जहाँ छद के प्रथम दो चरणों में कच्ची जोड़ और दूसरे दो में पक्की जोड हो वहाँ यह दोष होता है।[1]

---

१ कच्ची जोड़ उसे कहते हैं जिसमें शब्दानुप्रास नहीं आता है और पक्की जोड़ मे शब्दानुप्रास होता है। जैसे:—

(१०) बहरो—जहाँ शब्द योजना ऐसी बेढंगी हो कि शब्दों के दुतरफा अर्थ निकल कर भ्रम पैदा हो जाय, वहाँ यह दोष होता है, जैसे :—

"रामण हणियौ राम"

इससे 'राम ने रावण को मारा' और 'रावण ने राम को मारा,' ये दोनों अर्थ निकलते हैं। इसलिये 'बहरो' दोष है।

(११) अमंगळ—यदि किसी छंद के किसी चरण के पहले और अन्तिम अक्षर के मिलने से कोई अमंगल सूचक शब्द बने तो वहाँ पर यह दोष माना जाता है। जैसे :—

"महपन में पय रामरै"

छप्पय की इस तुक का पहला अक्षर 'म' और अन्तिम अक्षर 'रै' है इनके संयोग से 'मरै' शब्द बनता है, जो अशुभ है। अतः यहाँ पर 'अमगळ' दोष है।

(४) डिंगल-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

डिंगल भाषा के क्रमागत विकास और उसकी साहित्यिक प्रौढ़ता को ध्यान में रखकर यदि डिंगल साहित्य के ६०० वर्षों के इतिहास का विभाजन किया जाय तो वह निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त हो सकता है :—

आरम्भकाल—(सं० १०००—१४००)
मध्यकाल—(स० १४००—१८००)
उत्तरकाल—(स० १८००—२००२)

आरंभकाल (सं० १०००—१४००)

आदि काल की साहित्यिक सामग्री बहुत न्यून मात्रा में उपलब्ध होती है और जो है वह भी बहुत संदिग्ध और अव्यवस्थित है। इस समय के डिंगल के बहुत से कवियों की गणना हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखकों

"तीर शेलाँ छुराँ भींक तरवारियाँ"
—कच्ची जोड़

"तहक नीषाण गिरवाण हरण तन"
—पक्की जोड़

ने अपने वीर गाथा काल के कवियो मे भी की है। पर इस सम्बन्ध में उन्होने बडा धोखा खाया है। इसका मुख्य कारण है डिंगल भाषा से उनकी अनभिज्ञता। डिगल भाषा मे ही कुछ ऐसी विशेषता है कि बहुत पीछे की होते हुए भी वह बहुत प्राचीन दिखाई पडती है। वशभास्कर, केहर प्रकाश आदि ग्र थ इस कथन के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। ये ग्रथ आधुनिककाल मे लिखे गये हैं, पर भाषा से कई शताब्दियो पहले के प्रतीत होते है। अतएव डिंगल के किसी भी ग्रथ के रचना-काल का निर्णय करते वक्त इतिहास, भाषाशास्त्र इत्यादि के अतिरिक्त डिगल व्याकरण की दृष्टि से भी उस पर विचार होना आवश्यक है। आगे इस काल के माने जाने वाले कवियो का सक्षिप्त परिचय दिया जाता है। इस विषय में जो नवीन शोध हाल ही मे हुए हैं उनसे भी सहायता ली गई है।

(१) **दलपत विजय**—इनका लिखा खुमाण रासो नामक एक ग्रथ प्रसिद्ध है। ये मेवाड़ के राजा खुमाण (दूसरे) के समकालीन माने जाते हैं और कहा जाता है कि ये जाति के भाट थे। खुमाण ने स० ८७० से ६०० तक राज्य किया था। अतः उपरोक्त कथन के अनुसार यही समय दलपत विजय का भी ठहरता है। लेकिन हाल ही मे श्रीयुत अगरचद नाहटा का खुमाण रासो पर जो एक लेख नागरीप्रचारिणी पत्रिका में निकला है उसमें उन्होने अभिहित सभी बातो को निर्मूल सिद्ध किया है।[१] नाहटा जी के पास खुमाण रासो की एक हस्तलिखित प्रति भी मौजूद है। इसमें २६० पृष्ठ हैं। इस प्रति के आधार पर नाहटा जी ने बतलाया है कि दलपत विजय जाति के भाट नहीं, बल्कि तपागच्छ के कोई जैन साधु थे, जिन्होने स० १७३० और १७६० के बीच किसी समय खुमाणरासो की रचना की थी। नाहटा जी का उक्त कथन ठीक ही है, क्योकि भाषा भी खुमाणरासो की स० १७०० के पहले की प्रतीत नही होती। नमूना देखिये :—

> आव भाव अंबाव, भगति कीजे भारत्ति।
> जाग जाग जगदंब, सत सानिध सकत्ति॥
> सुप्रसन्न होय सुरराय, वयण वाचावर दीजे।
> बालक वेले बॉह, प्रीत भर प्यालो पीजे॥

---

१ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४, अंक ४, पृ० ३८७-३९८।

महाराज राज राजेश्वरी, दलपति सूँ कीजे दया।
धन मोज महिर मातगिनी, माय करो मोसू मया॥

(२) साँईदान—ये सिलका गोत्र के चारण मेवाड के सिगला नामक गाँव के रहनेवाले थे। इन्होंने 'सम्वतसार' नाम का एक ग्रथ बनाया था। मिश्रबन्धु विनोद तथा हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट में इनका रचना-काल स० १२०० के आसपास माना गया है, जो गलत है। ग्रथ की भाषा स० १६०० के पहले की नहीं है। 'सवतसार' वर्षा-विज्ञान का ग्रथ है। इसकी भाषा बोल चाल की राजस्थानी है। एक उदाहरण यहा दिया जाता है :—

मेघमाल जउ सास्त्र कउ, अरु जोतिस कउ तत।
जिन देख्या आगम कथइ, सँमतसार यो ग्रंथ॥
पाखली कीर्नी प्रसन, हे देवन के देव।
सुरभप दुरभप परत हैं, सो भव कहिये भेव॥
महादेव उत्तर दियो, सुनहु उमा चित लाय।
सुरभप दुरभप की तुम्हे, देऊँ भेद बताय॥

(३) नरपति नाल्ह—इनकी जाति, जन्म तिथि आदि के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। कोई इन्हें राजा, कोई भाट और कोई व्यास ब्राह्मण बतलाते हैं। इनके रचे वीसलदेव रासो का स्थान हिन्दी साहित्य में बडे महत्त्व का माना जाता है। इसकी लगभग पन्द्रह हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें बहुत पाठान्तर है और रचना-काल भी भिन्न-भिन्न प्रतियों में भिन्न भिन्न दिये हुए हैं। इनमें दो प्रतियाँ मुख्य हैं, जो क्रमशः जयपुर और बीकानेर से मिली हैं। पहली प्रति में ग्रथ का निर्माण-काल स० १२१२ और दूसरी में स० १०७३ दिया हुआ है।

(१) बारह से बहोत्तराँ मँझारि, जेठ वदी नवमी बुधवारि।
—जयपुर

(२) संवत सहस तिहत्तर जाँणि, नाल्ह कवीसर रसिय बखाणि।
—बीकानेर

जब तक यह दूसरी प्रति प्राप्त नहीं हुई थी, अधिकाश विद्वान बीसलदेव रासो का रचना-काल स० १२१२ ठीक मानते थे और नाल्ह को बीसलदेव चतुर्थ (स० १२००-२१) का समकालीन बतलाते थे। परन्तु इस द्वितीय प्रति के कारण अब कुछ लोग उनका बीसलदेव द्वितीय (स० १०३०-५६)

के आसपास होना मानने लगे हैं और रासो-का- निर्माण-काल सं० १०७३ ठीक - बतलाते हैं। यह विषय विवादग्रस्त है और जब तक दूसरी प्रति भी प्रकाशित होकर सामने न आ जाय तब तक उपरोक्त मतों में से एक को सही और दूसरे को गलत बतलाना कठिन है। नागरी-प्रचारिणी सभा काशी की ओर से वीसलदेव रासो का जो संस्करण निकला है वह उल्लिखित जयपुर वाली प्रति के अनुसार छापा गया है और उसमें ग्रंथ का रचना-काल सं० १२१२ दिया हुआ है। पर उसकी भाषा को देखकर तो उसे सोलहवीं शताब्दी के पहले का ही रचा हुआ मानने को जी नहीं चाहता, सं० १२१२ तो बहुत दूर की बात है। इस प्रसंग में यहाँ पर इतना और भी बतला देना समीचीन जान पड़ता है कि डा० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा ने हम्मीर काव्य (संस्कृत) के रचयिता नयनचन्द्र सूरि (सं० १३५८) और-नाल्ह को समसामयिक माना है और इसलिये ओझा जी के अनुसार रासो का निर्माण-काल सं० १३५८ के आसपास ठहरता है।[1]

वीसलदेव रासो एक छोटा सा वर्णनात्मक काव्य है जो ३१६ छंदों में समाप्त हुआ है। इसकी भाषा बोल-चाल की राजस्थानी, कविता बहुत साधारण तथा कथा-भाग अधिकतः अनैतिहासिक है। और छंदोभंग तो इतना है कि समस्त ग्रंथ में शायद ही कोई छंद ऐसा निकले जो पिंगल-शास्त्र की दृष्टि से ठीक हो। इसकी कविता का नमूना देखिये :—

प्रणमू अणुमन्त अजनी-पूत।
भूल्यो आखर आणज्यो सूत॥
कर जोडे नरपति कहइ।
धार थी आवज्यो भोज नरेस॥

(४) चंदबरदाई—इनके रचे पृथ्वीराज रासो के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। कविराजा श्यामलदास, डा० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा आदि इतिहासवेत्ताओं ने इसे सुनी सुनाई बातों के आधार पर सं० १६०० के आस-पास का लिखा हुआ एक जाली ग्रंथ माना है। इसके विपरीत बाबू श्याम सुन्दर दास, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित इत्यादि विद्वान इसे पृथ्वीराज के समय की रचना बतलाते हैं और कहते हैं कि अभी जो ग्रंथ पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रचलित है उसमें बहुत सा अंश

---

१ 'राजपूताने का इतिहास; पृ० १९ (भूमिका)।

पीछे से जोडा गया है। प० मथुरा प्रसाद जी ने सोलनवाली प्रति को असली रासो माना है और उसके थोडे से अंश को प्रकाशित भी करवाया है।[1] इसकी भाषा बहुत परिमार्जित एवं व्याकरण सम्मत है और छंदोभग भी इसमें नहीं है। लेकिन भाषा उसकी भी पृथ्वीराज के समय की भाषा नहीं इतना निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है। भाषा की कसौटी पर सिर्फ वे चार छप्पय खरे उतरते हे, जो मुनि जिनविजय जी को हाल ही मे मिले हैं। इनके मिलने से अधिक कुछ नहीं तो कम से कम ओझा जी आदि विद्वानों का यह कथन तो गलत सिद्ध हो गया है कि चद नाम का कोई कवि पृथ्वीराज के राजत्व काल मे हुआ ही नहीं। इन चार छप्पय मे से एक को हम नीचे उद्धृत करते हैं —

त्रिण्हि लक्ख तुषार सवल पाषरिअइं जसु हय।
चऊदसय मयमत्त दंति गज्जंति महामय॥
वीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर।
ल्हूसडु अरु वलु यान संख कु जाणइ तांह्पर॥
छत्तीस लक्ख नराहिवइ विहिविनिडिओ हो किम भयउ।
जइचंद न जाणउ जल्हूकइ गयउ कि मूउ कि धरि गयउ॥

(५) जल्हण— ये चदवरदाई के चतुर्थ पुत्र थे। इनका लिखा हुआ कोई ग्रंथ अभी तक नहीं मिला। लेकिन प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज रासो मे निम्नलिखित दोहे के बाद का जो अंश है, वह इन्ही का लिखा हुआ है:—

आदि अत लगि वृत्ति मन, व्रन्नि गनी गनराज।
पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चले गज्जन नृप काज॥

यदि इस कथन मे कुछ सत्यांश हो तो इससे इनका भी एक उच्चकोटि का कवि होना सिद्ध होता है। क्योकि पृथ्वीराज रासो का अंतिम भाग जो इनका रचा बतलाया जाता है, काफी मार्मिक और सरस है। इनका एक छप्पय देखिये :—

मरन चद वरदाइ, राज पुनि सुनिग साहि हनि।
पुहुपजंलि असमान, सीस छोड़ सुदेवतनि॥
मेछ अवाद्धित धरनि, धरवि सव तीय सोह सिग।
तिनहि तिनहि संजोति, जोति हि संपातिग॥

---

१ प्रकाशक: मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर।

रासो असंभ नव रस सरस, चंद छंद किया अमिय सम।
शृगार, वीर, करुना विभछ, भय अद्भुत हसत सम॥

(६) नल्लसिंह भाट—इनका भी विशेष वृत्त ज्ञात नहीं है। इनके रचे विजयपाल रासो से केवल इतना ही पता लगता है कि ये विजयगढ (करौली राज्य) के यदुवशी राजा विजयपाल के आश्रित थे। विजयपाल रासो का थोडा सा अश प्राप्त हुआ है। इसमें सिद्धराव नामक किसी राजा के साथ विजयपाल की लड़ाई का वर्णन है। इस युद्धका समय नल्लसिंह ने स० १०९३ दिया है। पर इसमें बहुत सी इतिहास विरुद्ध बातें भी भरी हुई हैं जिससे स्पष्ट है कि विजयपाल रासो बहुत पीछे की रचना है। भाषा, शैली आदि से भी यह ग्रथ इतना प्राचीन नहीं प्रतीत होता। कुछ विद्वानों ने इसका निर्माण काल स० १३५५ के आस-पास माना है। लेकिन हमारे याल से यह और भी बाद का लिखा हुआ है। इसकी भाषा-कविता का नमूना देखिये :—

जुरे जुध यादव पङ्ग मरद्द, गहीकर तेग चढ्यो रणमद्द।
हँकारिख जुद्ध दुहूँ दल सूर, मनौ गिरि सीर जलध्थरि पूर॥
हलौं हिल हाँक बजी दल मद्धि, भई दिन ऊगत कूक प्रसिद्धि।
परस्पर तोप वहै विकराल, गजै सुर भुम्मि सरग्ग पताल॥

उपरोक्त कवियो के अतिरिक्त इस काल के थोडे से और कवियो का भी पता लगा है। इसमें कवि सोम प्रभाचार्य्य, जैन साधु जिणवल्लह, हल्ल, ऊजळी, सारगधर और जज्जल मुख्य हैं। राजस्थान का सर्वप्रिय प्रेमगाथात्मक काव्य 'ढोला मारू रा दूहा' भी इसी काल की रचना है।

मध्यकाल (स० १४००—१८००)

मध्यकाल डिंगल साहित्य का स्वर्ण-युग माना जाता है। इस काल मे डिंगल भाषा अपने पूर्ण प्रौढत्व को प्राप्त हुई और उसमें सैकड़ों ग्रथ तथा अगणित फुटकर गीत, दोहे आदि लिखे गये। राजस्थान के कुछ विद्वान इस समय के डिंगल ग्रथों को ही विशुद्ध डिंगल के ग्रथ मानते हैं। इस काल में एक नई बात यह हुई कि पद्य ग्रंथों के अतिरिक्त थोडे से गद्य ग्रथ भी इस भाषा में रचे गये। इस समय के बहुत प्रसिद्ध कवियो का विवरण नीचे दिया जाता है :—

(१) बादर—ये ढाढी जाति के कवि मारवाड के राव वीरमजी के आश्रित थे। इनका रचना-काल स० १४४० के आस-पास ठहरता है।

इन्होंने 'वीरमायण' नाम के एक ग्रंथ की रचना की जिसमें वीरमजी के वीरोचित कार्यों का वर्णन है। इस ग्रंथ की भाषा का नमूना देखिये :—

दळ अणकळ दीठेह, वीरह वीरम ये कही।
वळियो रण वाधेह, मिळियो सारा मोहरी ॥[1]

(२) श्रीधर—ये 'रणमल-छंद' के रचयिता प्रसिद्ध हैं। इस काव्य का समय सं० १४५४ निश्चित किया गया है। इसमें ईडर के राठौड़ राजा रणमल के शौर्य-पराक्रम का वर्णन है। समस्त ग्रंथ वीररस से लबालब भरा हुआ है। भाषा भी इसकी विषयानुकूल और सशक्त है :—

रउद्द सद्द आसमुद्द साहसिक्क सूरउ।
कठोर थोर घोर छोर पारसिक्क पूरउ॥
अहग गाह अग गाहि गालि बाल किज्जइ।
विछोहि जोड तेह नेहि मेच्छ लोडि लिज्जइ॥

(३) सिवदास—ये गागरोनगढ़ (कोटा राज्य) के राजा अचळदास खीची के आश्रित थे। इन्होंने 'वचनिका अचळदास खीची री' नामक एक ग्रंथ सं० १४७० के आस-पास बनाया था। इसमें माडू के बादशाह के साथ अचळदास के युद्ध का वर्णन है। इसकी भाषा बहुत प्रौढ़ तथा कविता बहुत सरस और भावपूर्ण है :—

एकइ वन्न वसतड़ा एवड़ अंतर काय।
सिंघ कवड्डी ना लहै, गयवर लाख विकाय॥
गयवर गळे गळत्थियो, जह खंचे तहँ जाय।
सिन्घ गळत्थण जे सहै, तो दह लाख विकाय॥[2]

(४) सूजो—ये बीठू शाखा के चारण थे। इन्होंने 'राउ जइतसी रउ छंद' नामक एक ग्रंथ की रचना की थी, जिसका निर्माण-काल सं० १५९१ और १५९८ के बीच का माना गया है। इसमें बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान के साथ बीकानेर के राव जइतसी की लड़ाई का वर्णन है।

---

१ अणकळ = अपार। दीठेह = देखकर। वळियौ रण वाधेह = रण के लिये बाध्य होकर। मिळियौ सारा मोहरी = सब से आगे जाकर भिड़ा।

२ वसतड़ा = रहनेवाले। एवड = इतना। काय = क्यों। कवड्डी = कौड़ी। गळत्थियो = बंधन। दह = दस।

इतिहास की दृष्टि से यह ग्रथ बड़े महत्त्व का है। इसमे कुल मिलाकर ४०१ छंद हैं। इसकी भाषा बहुत प्रौढ तथा परिमार्जित है और वर्णन-शैली भी सजीव है। कवि ने 'वयणसगाई' का निर्वाह बड़ी कट्टरता के साथ किया है :—

> रउद्र दल रहच्चइ जइतराउ।
> होहू कि मेह वाजइ हलाउ॥
> ताइयाँ उरे धइ कूँत तेह।
> मारुअउ राउ मातउ कि मेह॥

(५) पृथ्वीराज—ये बीकानेर के राजवश मे से थे। इनका जन्म और देहान्त क्रमशः स० १६०६ और सं० १६५७ मे हुआ था। इनका रचा 'वेलि क्रिसनरुक्मणी री' डिंगल साहित्य मे श्रृंगाररस का सर्वोत्कृष्ट ग्रथ माना जाता है। इसमे भाषा और भाव, कला और कल्पना का सुन्दर सम्मिलन हुआ है। श्रृंगाररस के अतिरिक्त इन्होंने वीर और शान्तरस की बड़ी उत्तम कविता की है। इनका शान्तरस का एक पद देखिये :—

> हरि जेम हलाड़ो जिम हालीजै, कॉय धणियाँ सूँ जोर कृपाळ।
> मौळी दिवो दिवो छत्र माथै, देवो सो लेऊँ स दयाळ॥
> रीस करो भावे रळियावत, गज भावै खर चाढ गुलाम।
> माहरै सदा ताहरी माहव, रजा सजा सिर ऊपर राम॥
> मूझ उमेद वड़ी महमैहण, सिन्धुर पाखै केम सरै।
> चीतारो खर सीस चित्र दै, किसूँ पूतळियाँ पॉण करै॥
> तू स्वामी प्रथुराज ताहरो, वळि बीजाँ को करै विलाग।
> रूड़ो जिको प्रताप रावळो, भूँडो जिको हमीणो भाग॥[1]

---

१ हलाडो = चलाओ। जेम = जिस तरह। धणियाँ = स्वामी। मौळी = जलाने की लकडी का भार। भावै = चाहे। रळियावत = प्यार करो। माहरे = मेरे। ताहरी = तेरी। माहव = माधव। रजा = आज्ञा। महमैहण = परब्रह्म। सिधुर पाखै केम सरै = हाथी के बिना कैसे काम चले? चीतारो = चित्रकार पूतळियाँ = काष्ठ-प्रतिमा। बीजाँ = दूसरा। वळि = फिर। विलाग = वियोग। रूढ़ो = अच्छा। जिको = वह। भूडो = खराब। हमीणो = मेरा।

(६) ईश्वरदास—इनका जन्म मारवाड़ राज्य के भाद्रेस नामक गाँव मे स० १५९५ के हुआ था[1]। ये जाति के चारण थे। इनके पिता का नाम सूजो और माता का अमरबाई था। ये बहुत उच्च श्रेणी के भक्त थे। अपने समय मे ये देवता की तरह पूजे जाते थे और लोग 'ईसरा सो परमेसरा' कहकर इनका सम्मान करते थे। इनके ग्रंथों के नाम ये हैं—हरिरस, छोटा हरिरस, बाल लीला, गुण भगवत हंस, गरुड़ पुराण, गुण आगम, निंदा स्तुति, देवियाण, वैराट, राम कैलास; सभापर्व और हाला झाला रा कुडळिया। इनका देहान्त स० १६७३ मे हुआ था।

ईश्वरदास ने शान्त और वीर दोनों रसों मे कविता की है। इनकी भाषा बहुत सरल तथा स्पष्ट है और कविता मे कहीं भी परिश्रम की झलक नहीं दिखाई पड़ती। उदाहरण देखिये :—

राम नाम मत वीसरै, आतम मूढ अयाण।
काळ सकळ जग काटवा, कस ऊभो केवाण॥
राम भणै भण राम भण, अवरॉ राम भणाँय।
जिण मुख राम न ऊचरै, ता मुख लोह जड़ाय॥[2]

(७) दयालदास—ये मेवाड़ निवासी जाति के भाट थे। इन्होंने 'राणारासो', 'रासो को अंग' और 'अकल को अंग', तीन ग्रंथ बनाये जिनसे इनका रचना-काल सं० १६७५ के आस-पास अनुमानित किया जाता है। राणारासो मे मेवाड़ का इतिहास वर्णित है। इसकी भाषा और रचना-प्रणाली से दयालदास का एक सहृदय कवि होना सूचित होता है। एक छप्पय देखिये :—

परसि पाइ पंकज कुँवारु आलिंगि तात प्रति।
हथु मथ पर फेरि तथ दिय सीखु राज गति॥
चल्यौ कुँवर चतुरंग सजि सेना समूह चढ़ि।
हय गयद पयदल गरद आया सवा समढ़ि॥
परतळ अपार रथ सथ सजि गथ गुथि खचर दरक।
अवसान भाण कि क्यान चुकि कहि दयाल दविय अरक॥

---

१ पनरासो पिचाणवै, जनम्या ईसरदास।
चारण वरन चकार मे, उण दिन हुवो उजास।

२ काटवा = काटने के लिये। कस ऊभो = कसकर खडा केवाण = तलवार।

(८) दुरसा जी—ये आढा गोत्र के चारण थे। इनका जन्म सं० १५६२ में और देहावसान स० १७१२ में हुआ था। महाराणा प्रताप की प्रशसा में लिखी हुई इनकी 'विरुद छहतरी' का एक-एक दोहा अपने रग ढग का अप्रतिम है। ये अकबर के कृपा-पात्र थे। अकबर के आश्रित होकर भी इन्होंने उसकी प्रशंसा मे एक शब्द भी नहीं लिखा, यह एक ऐसी बात है जो अन्यान्य चारण कवियों से इन्हे बहुत ऊँचा उठा देती है। इनकी कविता में अकबरकालीन हिन्दू समाज का बडा मार्मिक चित्रांकन हुआ है। इनके दो दोहे देखिये :—

अकबर गरब न आॅण, हिन्दू सह चाकर हुआ।
दीठो कोई दीवाण, लटका करतो कटहड़े॥
अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हिदू तुरक।
मेवाड़ो तिण मॉह, पोयण फूल प्रतापसी॥

(९) जग्गाजी—ये खिड़िया शाखा के चारण थे। इन्होंने 'रतन महेसदासोत री वचनिका' नामक एक ग्रन्थ का निर्माण किया था। इसमे जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह के साथ औरगजेब के विद्रोही पुत्रो के युद्ध का वर्णन है। इस लड़ाई मे रतलाम के राजा रतनसिंह ने भारी वीरता का काम किया था। इसलिये उन्हीं के नाम से ग्रथ का नामकरण हुआ। यह युद्ध सं० १७१५ में हुआ था। अतः यही समय इस ग्रथ की रचना का भी समझना चाहिए। यह एक गद्य-पद्य मिश्रित ग्रथ है। इसमें प्रसगवश सभी रसो का वर्णन मिलता है। इनका एक दोहा यहाँ दिया जाता है।

जोड़ि भणै खिड़ियो जगो, रासो रतन रसाळ।
सूरा पूरा सांभळो, भड़ मोटा भूपाळ॥

(१०) मुहणोत नैणसी—ये जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) के दीवान थे। इनका रचना-काल स० १७२० के लगभग है। इन्होंने डिंगल गद्य में एक इतिहास ग्रन्थ लिखा जो 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे राजपूतों के ३६ वशों का इतिहास बड़ी उत्तमता के साथ लिखा गया है। यह इतिहास का एक बहुत प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसकी भाषा का नमूना देखिये :—
"अलावदीन जालोर ऊपर आयो; सोनगरा सूँ लड़ाई हुई। काधल व्याड़ा रै मुंहड़ै हुतो सु लडता मात।।चीत खाटा खूटा। कटारी पकड कर काम

आयो। अर मा कह्यो—बेटा कावल ! जो इम जाणू तो म्हाटा नं घर भगाऊँ।"

(११) मान—इनके वंश, माता-पिता आदि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। इनकी जाति के बारे में भी मत-भेद है। कुछ लोग इन्हें भाट और कुछ जैन यति बतलाते हैं। इन्होंने 'राज-विलास' नाम का एक ऐतिहासिक काव्य बनाया जिसकी समाप्ति सं० १७३७ में हुई थी। इसमें मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के वीरोचित कार्यों का वर्णन है। इसकी भाषा व्रजभाषा-मिश्रित डिंगल है। 'राजविलास' नागरी प्रचारिणी सभा काशी की ओर से छप चुका है। ग्रन्थ वीररस प्रधान है पर शृंगार की छटा भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। इतिहास और काव्य दोनों ही दृष्टियों से यह ग्रन्थ बड़े महत्त्व का है। कविता देखिये —

करि नाक सँभारि सँभारि सुहक्कत बंधत बान 'अभंग बली।
तनु त्रान संधान सुत्रान स प्रानहि बेधत आनहि होत रली ॥
सर सोक बजंत सुढंकिय अबर डबर जानि की मेघ श्रवै।
वहि रंग प्रवाह सराह प्रवालिय चोल रँगे जनु चेल चुवै ॥

(१२) हरिदास—ये जाति के भाट थे। इन्होंने 'अजीतसिंह-चरित्र' नाम का एक ग्रन्थ सं० १७६३ के आस-पास बनाया था। इसमें जोधपुर के महाराजा जसवतसिंह (प्रथम) और उनके पुत्र अजीतसिंह का इतिहास वर्णित है। यह ग्रन्थ उक्त दोनों महाराजाओं का इतिहास जानने के लिए बड़ा उपयोगी है। इसमें एक विशेषता यह भी है कि घटनाओं के साथ साथ कवि ने उनके संवत भी दे दिये हैं जो अन्य कवियों के ग्रन्थों में कम देखे जाते हैं। एक उदाहरण लीजिये :—

सोलै सै छीहोतरै, महिनै आसू माह।
टीकायत बैठो तखत सूर तणौ गजसाह ॥
जहाँगीर दिल्ली हुँतां, पठयो गज सिरपाव।
नौबत घोडो नवसहस, रिधू कमंधाँ राव ॥[1]

---

[1] आसू = आश्विन मास। टीकायत = पाटवी। सूर तणौ = सूरसिंह का। गाज साह = गजसिंह। हुँता = से। रिधू – समृद्धिशाली। कमधाँ राव = राठोडों का राव।

(१३) वीरभांण—ये रत्नू शाखा के चारण जोधपुर के महाराजा अभयसिंह (सं० १७८१-१८०६) के आश्रित थे। इन्होंने 'राजरूपक' नामक एक ग्रन्थ बनाया जिसमें महाराजा अभयसिंह और अहमदाबाद के सूबेदार सरबलंद खाँ की लड़ाई का सविस्तर वर्णन है। वीरभाण की भाषा-शैली आलंकारिक और कविता बहुत सरस है। नमूना देखिये :—

चणै जान सोभा छभा देव वाली।
सुरनाथ चैं, साथ वालै सिघाली॥
थया वृंद नाखत्र के चंद्र साथे।
कना सोभियो सिंभु जी खुसे माथे॥[१]

(१४)-करणीदान—ये कविया शाखा के चारण मेवाड़ राज्य के शूलवाला गाँव के रहनेवाले थे। इन्होंने 'सूरजप्रकाश' नाम का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बनाया जिसमें ७५०० छंद हैं। इसमें सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से लगा कर अभयसिंह तक के मारवाड़ के राजाओं का वर्णन है। महाराजा अभयसिंह को सुनाने के लिये करणीदान ने 'सूरज प्रकाश' का सारांश एक दूसरे छोटे ग्रन्थ के रूप में भी लिखा था जो 'विड़द सिणगार' के नाम से प्रख्यात है। करणीदान की रचना बहुत ललित, प्रवाह युक्त एवं भावापन्न है और प्रसंगानुकूल उसमें सभी रसों की बड़ी भव्य व्यंजना हुई है। रौद्ररस की एक कविता देखिये :—

विस्वामित्रे स एण वात, कोपियो भयंकरा।
गिरा तरासरा गँभीर, धूजवे वसुधरा॥
रोमंच अंग घोम रूप, ब्रह्म तेज मैं वणे।
जटा छटा छटा जडागि, आगि नेत्र ऊफणे॥

उत्तर काल (सं० १८००—१९९७)

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के साथ साथ डिंगल साहित्य का उत्तरकाल भी प्रारम्भ होता है। भाषा और विषय दोनों ही दृष्टियों से इस काल में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। बोलचाल की राजस्थानी और ब्रजभाषा डिंगल पर अपना प्रभाव जमाने लगीं और नए काव्यों का स्थान बहुत कुछ क्षीण होने लगा, राम-महिमा तथा अन्य नैतिक और पौराणिक विषयों

१ जान = बरात। छभा = सभा। चैं = के। सिघाली = श्रेष्ठ। नाखत्र = नक्षत्र। थया = हुए। वृंद = समूह। कना = अथवा। सिंभु = महादेव। खुसे = बैल, नन्दी।

ने ले लिया। इस काल की डिंगल और मध्यकालीन डिंगल में थोड़ा सा अंतर है। राजस्थानी और ब्रजभाषा मिश्रित इस डिंगल का नाम कुछ विद्वानों ने 'कृत्रिम डिंगल' रखा है, जो ठीक ही प्रतीत होता है। बाँकीदास आदि दो-एक इस काल के कवियों ने भी विशुद्ध डिंगल में कविता की है, पर ध्यानपूर्वक देखने से इनकी भाषा पर भी उक्त दो भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

(१) गोपीनाथ—ये बीकानेर के महाराजा गजसिंह के आश्रित थे। इन्होंने 'ग्रन्थराज' नामक एक ग्रन्थ बनाया जिसका दूसरा नाम 'गजसिंह-रूपक' भी है। इसमें महाराजा गजसिंह का चरित्र वर्णित है। इसका निर्माण काल सं० १८०० के आसपास ठहरता है। ग्रन्थ में गाहा, पाघड़ी, कवित्त, दूहा आदि छंदों का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। इस ग्रंथ के आधार पर गोपीनाथ डिंगल काव्य के उत्कृष्ट कवि कहे जा सकते हैं। इनकी भाषा का नमूना देखिये :—

जैतसी भंजि कंमरो जड़ागि, भूधहर राइ लागे धियागि ॥
मालदे तणो भजीयौ माण, कलियाण पांण भले केवाण ॥

(२) हुक्मीचंद—ये खिड़िया गोत्र के चारण जयपुर राज्य के भडेटिया गाव के रहने वाले थे। इनका रचना-काल सं० १८२० के आसपास है। ये जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह के दरबारी कवि थे। हिन्दी में जिस तरह बिहारी के दोहे और गिरधर की कुंडलियाँ प्रसिद्ध हैं उसी तरह डिंगल में वीररसपूर्ण गीतों के कारण हुक्मीचंद का बड़ा नाम है। फुटकर छप्पय आदि भी इन्होंने बहुत अच्छे लिखे हैं। महाराजा प्रतापसिंह की प्रशंसा में लिखा हुआ इनका एक छप्पय यहाँ दिया जाता है :—

अंबापुर गिर उदै, क्रीत ऊजळ किरणालं।
तप प्रताप दन तेज, भाग झळहळ दुत भाल ॥
अधम अलुक होय अंध, मित्र चकवा प्रमोदत।
अबुध तिमर घट ओज, असह उड़गण आक्रंदत॥
जयसाह वोया जग जय जपत, वन कंज कविंद विकासिया।
सुभीयांण मुकट हिंदुवाण सिर, पातळ भाण प्रकासिया ॥[1]

---

१ अंबापुर = आमेर। क्रीत = कीर्ति। अलुक = उल्लू। पातळ = प्रतापसिंह।

(३) मंछाराम—ये जोधपुर के रहनेवाले जाति के सेवग थे। इन्होने सं० १८६३ मे 'रघुनाथ रूपक' नाम का डिंगल का एक रीति ग्रथ बनाया था। इसमें डिंगल में प्रयुक्त गीतों तथा बयणसगाई आदि अलकारों पर प्रकाश डाला गया है। उदाहरण मे रामायण की कथा क्रम से वर्णित की गई है। इसकी भाषा शुद्ध डिंगल है और विषय प्रतिपादन-शैली भी बहुत सहज और रोचक है। डिंगल की काव्य रीति पर यह एक अनूठा ग्रथ है और इस दृष्टि से मछाराम का स्थान डिंगल साहित्य में बड़े महत्व का है। इनकी भाषा-कविता का उदाहरण देखिये :—

> वयणसगाई वेस, मिल्याँ साँच दोसण मिटै।
> किणयक समै कवेस, थपियो सगपण ऊधपै॥
> खून कियाँ जाणे खलक, हाड़ बैर जो होय।
> वयणसगाई वयण तो, कलपत रहै न कोय॥

(४) महाराज मानसिंह—ये मारवाड़ के राजा थे। इनका जन्म स० १८३६ में हुआ था इनके पिता का नाम गुमानसिंह और पितामह का विजयसिंह था। बडे काव्य प्रेमी और गुणग्राही थे और स्वयं भी बहुत अच्छी कविता करते थे। इन्होने २५ के लगभग हिन्दी-सस्कृत के ग्रथ बनाये। डिंगल मे भी कविता करते थे। इनका एक दोहा देखिये :—

> गिरपुर देस गमाड, भमिया पग पग भाखराँ।
> मह अँजसै मेवाड, सह अँजसे सीसोदिया॥[1]

(५) बांकीदास—ये आशिया शाखा के चारण थे। इनका जन्म सं० १८२८ मे और देहान्त स० १८६० मे हुआ था। इन्होंने २७ के लगभग ग्रथ बनाये जो नागरी-प्रचारिणी सभा काशी की ओर से प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी लिखी २७०० के लगभग ऐतिहसिक वातो[2] का पता भी हाल ही मे लगा है। इनसे राजस्थान के इतिहास सबधी बहुत सी नई बातो पर प्रकाश पडता है। बाकीदास स्पष्टभाषी पुरुष और सुधार-

---

१ अपने पर्वत, नगर और देश गँवाकर पैदल ही पर्वतों में घूमते रहे पर महाराणा (प्रताप) ने अपने धर्म की रक्षा की जिससे आज मेवाड़ देश गर्व करता है और सीसोदिया जाति को अभिमान है।

२ कहानी को राजस्थानी में वात कहते हैं।

वादी कवि थे। इनकी कविता के एक एक शब्द से उनके ऊँचे व्यक्तित्व और उनके महान आत्म-शक्ति का पता लगता है। इनका एक गीत नीचे दिया जाता है।

वस राखो जीभ कहें इम बांकों, कड़वा बोल्या प्रभत किसी।
लोह तणी तरवार न लागै, जीभ तणी तरवार जिसी ॥१॥
भारी अगै उगैरा भारत, हेकण जीभ प्रताप हुवा।
मन मिलियोड़ा तिकां माढवां, जीभ करै खिण मांह जुवा ॥२॥
मैला मिनख नजरां माथै, बात बणाय करै विस्तार।
बैठ सभा बिच मूंडा बारै, वचन काढणां बहुत विचार ॥३॥
मन मे फेर धणी री माला, पकड़ै नह जमदूत पलो।
मिलै नहीं वकणां में माया, भाया कम बोलणां भलो[1] ॥४॥

(६) किशन जी—ये आढा गोत्र के चारण मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह (सं० १८३४-८८) के आश्रित थे। कवि होने के साथ साथ ये इतिहास के भी भारी ज्ञाता थे। इनके लिखे 'भीमविलास' तथा 'रघुवर-जस-प्रकाश' नामक दो ग्रंथ और सैकड़ों फुटकर कविताएँ मिली हैं। 'भीमविलास' में महाराणा भीमसिंह का जीवन इतिहास वर्णित है और 'रघुवर-जस-प्रकाश' में डिंगल भाषा और संस्कृत के मुख्य मुख्य छंदों का विवेचन है। इनकी भाषा बहुत प्रांजल एवं परिमार्जित है और इनकी रचना से इनके ऊँचे पांडित्य का परिचय मिलता है। इनकी कविता का नमूना देखिये —

चाकर चोर कुचीत कुचत अस राव क्रमत्तो।
वछ पान फल विन्न दान त्रिणन्नपत अदत्तो ॥
पूत कपूत पिटाक ठोठ कविराज ठगारो।
खोटो दाम कुमंत्र नार विण असठ नगारो ॥

---

१ प्रभत = प्रशंसा। अगै = आगे, पूर्वकाल में। उगैरा = वगैरह। भारत = युद्ध। हेकण = एक। मिलियोड़ा = मिले हुए। तिकॉं = उनके। माढवा = मनुष्यों के। खिण = क्षण। जुवा = अलग। मैला = मलिन। मिनख = मनुष्य। माथै = ऊपर। मूंडा = मुख से। बारै = बाहर। धणी री = स्वामी की। पलो = वस्त्र का छोर। भाया = हे भाई। माया = धन।

क्रतघणी सचिव खोड़ो दूरक सत्र नेह खग सधिये।
कदेई भूल सकना सुकव ऐता वार न वँधिये॥

(७) कृपाराम—ये जाति के चारण थे। इनका रचना-काल सं० १८६० के आस पास माना जाता है। अपने नौकर राजिया को संबोधित करके इन्होंने थोड़े से सोरठे बनाये जो राजस्थान में 'राजिया के सोरठे' के नाम से प्रचलित हैं। ये सोरठे राजस्थान में बहुत लोकप्रिय हैं और छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी अपने पक्ष एवं प्रसंग का समर्थन करने के लिये इनका हवाला दिया करते हैं। अर्थ-चमत्कार और सरलता इन सोरठों के दो प्रधान गुण हैं। उदाहरण लीजिये :—

ऊँचे गिरवर आग, जलती सो देखै जगत।
पण जलती निज पाग, रती न सूझै राजिया॥
मूसा नैं मजार, हित कर बैठा हेकठा।
सब जाणै संसार, रस नह रहसी राजिया॥[1]

(८) बीठू भोमो—ये जाति के चारण थे। इनका रचना-काल सं० १८८० के आस-पास है। बीकानेर के महाराजा रत्नसिंह और उनके पुत्र सरदारसिंह की प्रशंसा में इन्होंने छोटे-छोटे तीन चार ग्रंथ बनाये जो बीकानेर के राज पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इन्होंने दूहा और छप्पय का प्रयोग अधिक किया है। इनकी भाषा का नमूना देखिये :—

सधर रतन इल सोहियो, कमँधा पत बीकाण।
तैं पाट प्रतपै रतन सा, भूपतियाँ बस भाण॥

(९) बख्तावर जी—ये जाति के राव (भाट) थे इनका जन्म सं० १८७० में मेवाड़ राज्यान्तर्गत बसी नामक गाँव में हुआ था। इन्होंने रसोत्पत्ति, मन्त्रार्णव आदि ग्यारह ग्रंथ लिखे जिनमें केहर प्रकास इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें कमलप्रसन्न नाम की एक वेश्या के प्रेम का वर्णन है। यह ग्रंथ सं० १९३६ में लिखा गया था। इसकी भाषा बहुत सरल और विषयानुकूल है। कविता भी बहुत सरस और भावपूर्ण है। उदाहरण :—

---

१ पाग = पगड़ी। पण = लेकिन। रती = रत्ती भर, तनिक भी। मूसा = चूहा। मजार = बिल्ली। हित कर = प्रेम कर के। हेकठा = एक साथ। रस = प्रेम। नह = नहीं।

माया पायर माण ले, जिण री माया जाण।
नहँ माणें जिणरी नहीं, कहत पुराण कुराण॥
या माया गाड़ी गड़े, वाढी वढ़े वजार।
अण-मॉणी कर आसकी, लगे न किण रे लार॥[1]

(१०) सूर्य्यमल—ये बूंदी राज्य के दरबारी कवि थे। इनका जन्म स० १८७२ मे और स्वर्गवास सं० १९२० मे हुआ था। डिंगल मे वीररस के सर्वोत्कृष्ट कवि माने जाते हैं। इनके लिखे 'वंशभास्कर' का राजस्थान मे बहुत आदर है। पर कविता की दृष्टि से इनकी 'वीर सतसई' 'वंशभास्कर' से भी अधिक सफल रचना है। सूर्य्यमल की कविता मे वीर-वीरांगनाओ के हृदयस्थ भावो की बड़ी मार्मिक व्यंजना हुई है। कविता क्या की है कवि ने हृदय ही बाहर निकाल कर रख दिया है। इनके दो दोहे यहॉ दिये जाते हैं :—

पीहर पूँछ खोलणॉ, पेई भूषण केर।
हेडवियॉ भाभी हँसी, नणन्द कनै नालेर॥१॥
नरॉ न ठीणो नारियॉ, ईखो संगत एह।
सूरॉ घर सूरी महळ, कायर कायर गेह॥२॥[2]

(११) गणेशपुरी—इनका जन्म मारवाड़ राज्य के पंचभदरा परगने के चारवास गांव मे स० १८८३ मे हुआ था। राजस्थान के प्रथम श्रेणी के कवियो मे इनकी गणना होती है। ये डिंगल और पिंगल दोनो मे कविता करते थे। इनकी कविता बहुत प्रौढ, परिमार्जित एव काव्य-कला कलित है पर उसमे प्रसादगुण की कमी है। इस काल के अन्यान्य कवियो की अपेक्षा इनकी भाषा पर पिंगल का प्रभाव कुछ अधिक दिखाई देता है :—

---

१ पायर=पाकर। माया=धन। अण-माँणी=विना भोगे। आसकी=प्रीति। लार=साथ। माण ले=भोग ले। कुराण=कुरान।

२ पीहर पहुँचने पर खोली जानेवाली भूषणों की संदूक खोलने पर भावज हँसी कि ओहो! ननद के पास सती होने का नारियल भी मौजूद है॥ १॥ हे पुरुषो! स्त्रियों की निंदा मत करो। यह तो संगति देखना चाहिये। वीरों के घर मे वीर महिला मिलेगी और कायर के घर मे कायर॥ २॥

हरि-सुत-श्रौन हरिश्रौन हरि दैहैं कर,
घरी-घरी घोर धनु-घट-घननाटे तें।
भेरि-रव-भूरि भट-भीर-भार भूमि भरि,
भूधर भरेगे भिंदिपाल भननाटे ते॥
खप्पर-खनक ह्वै न खेटक के खप्पर ह्वाँ,
खेटकी खिसकि जैहैं खग्ग खननाटे ते।
चूकि जैहै जान-धर जान को चलान बान,
बान-धर मेरे पान-बान सननाटे ते॥[1]

(१२) मुरारिदान—ये राजस्थान के प्रसिद्ध कवि सूर्य्यमल के दत्तक पुत्र थे। अपने पिता की तरह ये भी षड्भाषा मे प्रवीण और काव्य कुशल व्यक्ति थे। वशभास्कर का जो भाग अधूरा रह गया था उसे इन्होंने पूरा किया था। इसके सिवा इन्होंने दो ग्रन्थ और भी बनाये थे—डिंगल-कोश और वश-समुच्चय। ये डिंगल के भारी विद्वान थे। इनका रचा 'डिंगल-कोष' एक बहुत उपयोगी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ पद्य मे है। भाले के पर्यायवाची शब्द देखिये :—

कूँत त्रिभागो सेल कह, नेजो अर नेजाल।
सावळ गाजो सांगड़ो, छड़वाळो छड़ियाळ॥
बरछो वांस दुधार बद, चव भालो चोधार।
प्रास छड़ाळ रु नेत पढ, दुवधारो दोधार॥

(१३) ऊमरदान—ये मारवाड़ राज्यान्तर्गत ढाढरवाड़ा गाँव में स०१६०८ में पैदा हुए थे। इनकी कविताओं का एक सग्रह 'ऊमर-काव्य' के नाम से छप चुका है। ये सुधारवादी कवि थे। इनकी भाषा बोलचाल की राजस्थानी है जिसमें साहित्यिकता कम और ग्रामीणता अधिक है। इन्होंने पेटू साधु-महात्माओ का खूब भडा-फोड़ किया है। शिक्षित समुदाय की अपेक्षा राजस्थान के अपठित लोगो में इनकी कविता का प्रचार अधिक है। इनका एक दोहा देखिये :—

---

१ हरि......कर = अर्जुन के और घोड़ों के कानों को भगवान अपने हाथों से ढँकेंगे। भिंदिपाल = गोफन। खप्पर...ह्वाँ = खप्पर की खनखनाहट नहीं होगी; क्योंकि ढालों के खप्पर होंगे। खेटकी = ढालोंवाले। जानधर = सारथी। वानधर = अर्जुन। पान-बान = हाथ का का बाण।

कथा तू काई करे, हाय तमाखू हेत।
टका एक री टाट मे, दिन ऊगाँई देत॥

(१४) बालाबख्श—ये पालावत गोत्र के चारण थे। इनका जन्म जयपुर राज्य के हणूत्या नामक गाव मे स० १६१२ मे हुआ था। बहुत उच्चकोटि के कवि और साहित्य-प्रेमी सज्जन थे। इन्होंने नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी को १२०००) रु० का दान दिया जिसके व्याज से उक्त सभा की ओर से 'बालाबख्श-राजपूत-चारण पुस्तकमाला' की पुस्तके छपती है। बालाबख्श जी ने १६ ग्रन्थ तथा बहुत सी फुटकर कविताएँ लिखी जिनके प्रकाशन का आयोजन हो रहा है। इनका देहान्त स० १६८८ मे हुआ। नीचे इनकी एक कविता उद्धृत की जाती है। इसमे इनके गाँव का वर्णन है :

दिल्ली ते नैऋत उदीचि जय पत्तन ते,
प्राची जोधपुर ते अवाची अग्रसर अग्र।
झुंझणूँ ते जातवेद ईश घों रुमापुर ते,
सींकर ते उदित-कुकुभ सुख को समग्र॥
मेधाविक भृग हेत विकसित पुंडरीक,
उर्वी कढव मौलि-मंडित अनत उग्र।
वाकीवानी वातजाता आलय अमल ऐसो,
चूड़ामणि वुद्धन को विदित हनूत नग्र॥[1]

(१५) महाराज चतुरसिंह—ये मेवाड़ के राजवश मे से थे। इनका जन्म स० १६३३ मे हुआ था। इनके पिता का नाम सूरतसिंह और दादा का अनूपसिंह था। बडे सरल हृदय एव साधु प्रकृति के पुरुष थे। ये हिन्दी संस्कृत आदि कई भाषाएँ जानते थे। इन्होंने सोलह ग्रन्थ बनाये जिनमे शान्तरस की प्रधानता है। इनकी कविता बहुत सरस, मौलिकतापूर्ण एवं प्रभावोत्पादक है। उदाहरण :—

---

१ इनका जीवनचरित्र पुस्तकाकार मे छप चुका है। इसके लेखक जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान श्री हरिनारायण जी पुरोहित बी० ए० है।

रहँट फरै चरख्यौ फरै, पण फरवा मे फेर।
वो तो वाड़ हर्यौ करै, वो छूँता रा ढेर ॥१॥
बाला वचे बिरोध जी, करै फूँकर्या चाड़।
वासूं तो भाटो भलो, रूप ने मेटे राड़[1] ॥२॥

आधुनिक काल मे राजस्थान के अधिकाश साहित्य का निर्माण हिन्दी भाषा में हो रहा है और डिंगल की जीवन-शक्ति नष्टप्राय सी हो गई है। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है, हिन्दी की उन्नति में ही हमारी और हमारे देश की उन्नति है। अतएव उसके प्रचार एव प्रसार के लिये जितना भी उद्योग हम कर सके, वह थोडा है। लेकिन दुख और आश्चर्य्य तो इस बात का है कि डिंगल के प्रति हिन्दी के विद्वानों का जितना आदर-भाव है उसका शताश भी राजस्थान के साहित्य-सेवियो का उसके प्रति नहीं है। इससे अधिक लज्जा की बात और क्या हो सकती है ? हर्ष का विषय है कि हाल ही में राजस्थान के कुछ नवयुवको ने डिंगल भाषा और साहित्य को पुनर्जीवित्त करने का बीड़ा उठाया है। ईश्वर उन्हें इस सुकार्य में सफलता प्रदान करे, यही हमारी हार्दिक इच्छा है।

उदयपुर
ता० १०—८—१९४०

मोतीलाल मेनारिया

—:०:—

---

१ रहट फिरता है और कोल्हू भी, लेकिन दोनों के फिरने के उद्देश्यों में अंतर है। एक तो पानी देकर गन्ने के खेत को हरा-भरा करता है और दूसरा गन्नों को पेलकर छोई का ढेर लगा देता है ॥१॥ उन लोगों से, जो दो प्रेमियों को उकसा कर उनमे मनमुटाब पैदा कर देता है तो वे पत्थर (मीनारे) अच्छे हैं जो दो सीमाओं के बीच मे गड़ कर झगड़े का अंत कर देते हैं ॥२॥

महाकवि चंदबरदाई

चदबरदाई डिंगल काव्य के अमर जीवों मे से एक हैं। ये जाति के भाट थे। इनके पिता का नाम वेण और गुरु का गुरुप्रसाद था। अजमेर के चौहानो के यहाँ इनके पूर्वजो की यजमानी थी। इनका जन्म पजाव प्रान्त के प्रसिद्ध नगर लाहौर में हुआ था।

चद का जन्म किस सवत् में हुआ, इसका ठीक ठीक पता नही चलता। कहा जाता है कि चंद और उनके आश्रयदाता महाराजा पृथ्वीराज दोनों एक ही दिन पैदा हुए थे। इतिहासकारो ने पृथ्वीराज का जन्म वि० स० १२०५ निश्चित किया है। अतएव यही समय चद के जन्म का भी समझना चाहिए।

चौहान वंश से परपरागत सबध होने से बाल्यावस्था में चद की पृथ्वीराज से घनिष्टता हो गई थी और बड़े होने पर ये उनके राज कवि, सामत और प्रधान मत्री वन गये थे। पृथ्वीराज की तरह चंद भी वडे वीर एवं समरपटु थे और अश्वारोहण मे, शब्दवेधी बाण मारने में तथा असि-संचालन में बड़े सिद्धहस्त माने जाते थे। अतएव युद्ध के समय ओजस्विनी कविताओं द्वारा अपने आश्रयदाता तथा उनके सैनिकों को उत्साहित करने के अतिरिक्त युद्ध-क्षेत्र मे भी अपनी रण-दक्षता का परिचय इन्हें पूर्ण रूप से और प्रायः देना पड़ता था। अर्थात् ये कवि थे और योद्धा भी।

चद ने दो विवाह किये थे। इनकी पहली स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा और दूसरी का गौरी उपनाम राजोरा था। रासो की कथा चंद ने गौरी से कही है। गौरी प्रश्न करती है, चंद उसका उत्तर देते हैं। वह शका करती है, चद उसका समाधान करते हैं। इन दो स्त्रियों से चद के ग्यारह सतति हुई, दस पुत्र और एक कन्या। कन्या का नाम राजबाई था। पुत्रों मे चद का चौथा पुत्र जल्हण सब से योग्य, प्रतिभाशाली और गुणाढ्य था। चंद की मृत्यु के बाद इसी ने रासो को पूरा किया था।

प्रसिद्ध है कि निम्नलिखित दोहे के बाद रासो मे जो वर्णन पाया जाता है वह जल्हण ही का लिखा हुआ है :—

आदि अंत लगि वृत्ति मन, व्रन्नि गुनी गुनराज।
पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चले गज्जन नृप काज॥

वीर एवं साहसी होने के अतिरिक्त चंद षड्भाषा, व्याकरण, साहित्य, छंद-शास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, सगीत आदि कई विद्याओं मे पारंगत थे और कवि तो मा के पेट से ही पैदा हुए थे। इन गुणों के कारण चंद जहाँ जाते वहाँ उन पर सम्मान की वर्षा होती थी। ये राज दरबार के भूषण, वीरों के अग्रणी और कवियों के सिरताज थे।

चंद की मरण तिथि अनिश्चित है। रासो मे लिखा है कि चद और पृथ्वीराज का देहावसान एक ही दिन स० ११५८ (वि० स० १२४९) में साथ साथ गजनी मे हुआ था। परन्तु आधुनिक इतिहासवेत्ता रासोकार के उक्त कथन को सर्वांशतः सत्य नहीं मानते। पृथ्वीराज का मरण काल वि० सं० १२४९ (सन् ११९२ ई०) तो ये भी स्वीकार करते है पर साथ ही साथ उनका यह भी कहना है कि पृथ्वीराज ने भारत में मुसलमानों के साथ युद्ध करते हुए रणभूमि में प्राण छोडे थे, गजनी मे नहीं।[1] इसके सिवा, जैसा कि रासो मे लिखा मिलता है, पृथ्वीराज के गजनी मे कैद रहने और शाहबुद्दीन को एक तीर द्वारा धराशायी करने के पश्चात् चंद सहित आत्मघात करने की कथा का भी वे अनैतिहासिक और कवि कल्पना बतलाते हैं।[2] इन विभिन्न मतो के कारण तथा विश्वसनीय ऐतिहासिक सामग्री के अभाव मे इस संबध मे दृढता के साथ कुछ कहना बहुत कठिन है। फिर भी यदि इतिहास-लेखको का यह मत, कि पृथ्वीराज का देहान्त वि० सं० १२४९ मे हुआ था, ठीक है और रासो के 'इक्क दीह ऊपन्न इक्क दीहै समाय क्रम' आदि शब्दो का यही अर्थ है कि पृथ्वीराज और चंद दोनो एक दिन पैदा हुए और एक दिन मरे तब तो स्पष्ट ही है कि चन्द की मृत्यु भी वि० सं० १२४९ ही मे हुई।

चद ने पृथ्वीराज रासो नाम का एक बहुत बडा ग्रथ बनाया जिसमे वीर केसरी महाराज पृथ्वीराज चौहान का जीवन-चरित वर्णित है और डिंगल साहित्य का अमूल्य रत्न, काव्य कला का उत्कृष्ट नमूना और

---

१ वी० ए० स्मिथ; आक्सफर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० २२०

२ ओझा, कोषोत्सव स्मारक सग्रह, पृ० ६०

हिन्दी भाषा भाषियों के गौरव की वस्तु माना जाता है। इसकी कई एक हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें से किसी मे श्लोक (अनुष्टुप छद) सख्या ३५००, किसी में ११५०० और किसी मे १००००० के लगभग है। चद ने रासो में कवित्त (छप्पय), दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा, साटक, वथुआ, भुजग प्रयात, पद्धरी, भुजगी, रसावला, मुरिल्ल, अरिल्ल, मलया, हनूफाल, विराज आदि कई प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। इनमे से कवित्त और दूहा की सख्या अधिक और दूसरों की अपेक्षाकृत कम है। उपरोक्त छदों मे वथुआ आदि दो-एक छद ऐसे भी हैं जिनका उल्लेख हिन्दी तथा सस्कृत के पिंगल शास्त्र के ग्रथों मे नहीं मिलता। चद की कविता में छदोभग बहुत दृष्टिगोचर होता है पर इसे लिपिकारों की कृपा समझनी चाहिए।

चद की भाषा विशेषतया डिंगल है, पर वह विशुद्ध डिंगल नहीं है। उसमे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश आदि कई भाषाओं का मिश्रण हुआ है। और अरबी, फारसी, तथा तुर्की के शब्द भी बहुलता से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कहीं कही तो भाषा अपने प्राचीन रूप में विद्यमान है और कहीं कहीं वदलते बदलते इतनी अर्वाचीन हो गई है कि उसे देख कर कभी कभी तो मन मे यह शका उठने लगती है कि क्या रासो वास्तव मे उतना पुराना ग्रंथ है जितना कि हम उसे मान बैठे हैं! रासो की भाषा में कारकों की संयोगात्मक और वियोगात्मक दोनो अवस्थाएँ मिलती हैं। संज्ञाओ के साथ जिन विश्लिष्ट विभक्तियों का प्रयोग हुआ है, वे इस प्रकार हैं :—

करण—सम, सो, तें, ते, त।
संप्रदान—सम, सों, प्रति।
अपादान—पास, कहँ, कों।
सबंध—कत, को, के, की, कैं, केरी, केरौ।
अधिकरण—मद्धि, मधि, मझि, माहिं, माहि, महिं, महि, मे, में, पर, मं।

चंद एक महान कवि थे। इनकी कविता बहुत सबल, भाषा बहुत प्रौढ़ एवं रचना-पद्धति बहुत स्वाभाविक है। रासो मे वीर रस प्रधान तथा अन्य रस गौण हैं और एक उच्च कोटि के महाकाव्य के सभी गुण पूर्ण रूप से उसमे पाये जाते हैं। चद की कल्पनाशक्ति अपूर्व थी। अतएव जिस विषय को उन्होंने पकड़ा उसका ऐसा विस्तृत, भव्य और सजीव

वर्णन किया है कि वह मूर्तिमान होकर हमारी आँखों के सामने घूमने लगता है। काव्य-कला की दृष्टि से रासो के सर्वोत्तम स्थल वे हैं जहाँ चंद ने रूप-वर्णन, सैन्य-वर्णन और युद्ध वर्णन किया है।

चंद के जीवन-चरित और उनकी भाषा-कविता आदि से संबंध रखने वाली मुख्य मुख्य बातो का उल्लेख ऊपर कर दिया गया है। अब सिर्फ रह जाती है, रासो, के ऐतिहासिक महत्व की बात। इस विषय मे भिन्न भिन्न इतिहासकारों और विद्वानो के भिन्न भिन्न मत हैं। कुछ विद्वान इसे वि० सं० १६०० के आस पास सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखा हुआ एक अनैतिहासिक ग्रंथ मानते हैं। इनका कहना है कि रासो मे वर्णित चौहानों, प्रतिहारों और सोलंकियों की उत्पत्ति के संबंध की कथा, चौहानो की वंशावली, पृथ्वीराज की माता, भाई, बहिन, पुत्र और राणियों आदि के विषय की कथाएँ तथा बहुत सी घटनाओ के संवत् तथा सामंतो आदि के नाम अशुद्ध और कल्पित है।[1] यदि रासो पृथ्वीराज के समय मे लिखा जाता तो इतनी बड़ी अशुद्धियों का होना असंभव था। इसके विपरीत कुछ दूसरे विद्वान रासो को एक अत्यन्त अनूठा ऐतिहासिक ग्रथ बतलाते हैं और कहते हैं कि इसमें विक्रम संवत् का नहीं, बल्कि एक संवत् विशेष (अनद सवत्) का प्रयोग हुआ है जिसमें ९०-९१ वर्ष जोड़ देने से शुद्ध शास्त्रीय विक्रम संवत् निकल आता है।[2] एक तीसरा मत और है। इसके समर्थको का कथन है कि रासो की रचना चंद ने पृथ्वीराज के राजत्व काल मे ही की थी पर उस समय वह इतना बड़ा न था। चंद के वंशज अथवा दूसरे लोग बाद में समय समय पर इसमें प्रक्षिप्त अश जोड़ते गये जिससे इसका कलेवर भी बढ़ गया और अशुद्धियाँ भी बहुत सी आ गई हैं।[3] यही मत यथार्थ प्रतीत होता है। कारण, एक तो भाषा रासो की कहीं कहीं बहुत प्राचीन है और दूसरे, घटनाएँ भी, जैसा कि कुछ लोगों का कहना है, सब अमौलिक नहीं हैं। रासो १७वीं शताब्दी में लिखा नहीं गया था, वरन् उस समय तक तो कविता-प्रेमियो मे इसका काफी प्रचार हो चुका था। काव्य-रसिक इसे बड़े चाव से पढते, सुनते और सराहते थे। सम्राट् अकबर (वि० स०

---

१ ओझा; कोपोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ६५

२ पृथ्वीराज रासो; पृ० १३९ (टिप्पणी)

३ पं० रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ४१

१६१७-६२) ने इसे सुना था[१]। रासो ऐसा छोटा एवं सरल ग्रंथ नहीं कि जो ४०-५० वर्षों के अल्प काल में इतना लोक-प्रिय हो जाय। फिर, जिस ग्रथ का इतना प्रचार रहा हो, जिसके मूल रूप के प्रतिरक्षण का प्रकाशन आदि द्वारा कोई समुचित प्रबध न किया गया हो और जिसकी सैकड़ों की सख्या में प्रतिलिपियाँ हो गई हो उसमें यदि हेर फेर दीख पड़े, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

उपरोक्त तीसरे मत की पुष्टि एक और प्रकार से भी होती है। हाल ही में मुनि जिनविजय जी को चद-विरचित रासो के चार प्राचीन छप्पय मिले हैं जिनकी भाषा को पृथ्वीराजकालीन भाषा का नमूना मानने में किसी भी निष्पक्ष विद्वान को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इन मे से तीन छप्पय अपने विकृत रूप में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो मे भी मिलते हैं। एक छप्पय को उसके परिवर्तित रूप के सहित हम नीचे उद्धृत करते हैं। इससे अधिक नही तो कम से कम इतना तो स्पष्ट हो ही जायगा कि चंद नाम का कोई कवि पृथ्वीराज के समय मे हुआ अवश्य था जिसने पृथ्वीराज का यशोगान करने के लिये उस काल की भाषा मे एक काव्य ग्रन्थ की रचना की जो पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रख्यात हुई और जिसके आधार पर अधुना प्रचलित रासो का वृहत् रूप खड़ा किया गया है। वह प्राचीन छप्पय यह है :—

इक्कु बाणु पहु वीसु जु पइ कइं बासह मुक्कओ।
उर भितरी खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ॥
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडिदाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरिवणु॥
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
न जांणउं चदबलद्दिउ कि न वि छुट्टइ इहफलह॥[२]

नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो (पृष्ठ १४६६, पद्य २३६) मे यह छंद इस रूप में मिलता है:—

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ।
उर उप्पर थरहर्यौ वीर कष्षतर चुक्यौ॥

---

१ Preliminary Report on the operation in search of MSS. of Bardic chronicles, p.29

२ राजस्थानी, अक्टूबर १९३९, पृ० ४६

बियौ बान संधान हन्यौ सोमेसर नंदन ।
गाढ़ौ करि निग्रह्यौ पनिव गड्यौ संभरि धन ॥
थल छोरि न जाइ अभागरौ गाड्यौ गुन गहि आगरौ ।
इम जंपै चंदवरद्दिया कहा निघट्टै इय प्रलौ ॥

आगे हम नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासावाले संस्करण में से बीसवाँ समय (पद्मावती विवाह कथा) और उन्तीसवां समय (घग्घर नदी का युद्ध) उद्धृत करते हैं। उक्त संस्करण बहुत अशुद्ध छपा है और इसीलिये जहाँ कहीं हमें अशुद्धियाँ दीख पड़ीं वहा हमने उदयपुर के 'विक्टोरिया हाल पुस्तकालय' वाली हस्तलिखित प्रति के अनुसार संशोधन कर लिया है।

(१)

(पद्मावती विवाह कथा)

दूहा

पूरब दिस गढ गढन पति, समुदसिखर अति द्रुग्ग ।
तहँ सु विजय सुर राजपति, जादू कुलह अभग्ग ॥१॥
हसम हयग्गय देस अति, पति सायर म्रज्जाद ।
प्रबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसांन बहु साद ॥२॥

कवित्त

धुनि निसान बहु साद, नाद सुरपंच बजत दिन ।
दस हजार हय चढत, हेम नग जटित साज तिन ॥
गज असंख गज पतिय, मुहर सेना तिय संखह ।
इक नायक कर धरी, पिनाक धर भर रज रक्खह ॥
दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरंग उम्मर डमर ।
भंडार लच्छिय अगनित पदम, सो पदम सेन कूवर सुघर ॥३॥

१—समुदसिखर = समुद्रशिखर गढ । विजय = विजयपाल । जादू कुलह = यदुवंशी । अभग्ग = अखंड ।

२—सायर = सागर । म्रज्जाद = सीमा । हयग्गय = हाथी और घोड़े । निसांन = नगाडे । साद = आवाज । हसम = (अ०, हशम) वैभव ।

३—मुहर सेना तिय संखह = एक शंख पैदल सेना उसके आगे

दूहा

पदम सेन कूवर सुघर, ता घर नारि सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुँ कला ससिभान ॥४॥

कवित्त

मनहुँ कला ससिभान, कला सोलह सो ब्रन्निय।
बाल बेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय॥
बिगसि कमल म्रिग भ्रमर, बैन खंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब, मोति नखसिख अहिघुट्टिय॥
छत्रपति गयंद हरि हंस गति, बिह बनाय संचै सच्चिय।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहु काम कामिनि रच्चिय ॥५॥

दूहा

मनहु काम कामिनि रच्चिय, रच्चिय रूप की रास।
पशु पंछी सब मोहिनी, सुर नर मुनियर पास ॥६॥
सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठि कला सुजान।
जानि चतुर दस अंगषट, रति बसंत परमान ॥७॥
सखियन संग खेलत फिरत, महलनि बाग निवास।
कीर इक्क दिष्षिय नयन, तब मन भयौ हुलास ॥८॥

चलती थी। इक..... रख्खह=एक धनुर्धारी सेना नायक के अधिकार में यह सेना रहा करती थी। सम=से। रथ सुरंग उम्मर डमर=सध्या समय के रंग बिरंगे बादलों के समान उसके रथ विचित्र थे।

४—कुँवर=कुँवरी। ससिभान=(सं० शशभानु) चद्रमा।

५—बेस=उम्र। अम्रित रस पिन्निय=उसी के पास से मानो अमृत रस पिया हो। स्रिग=माला। अहिघुट्टिय=अभिघटित किया, बनाया। बिह=विधाता।

७—चौसठि कला सुजान=गीत, वाद्य, नृत्य आदि चौसठ कलाओं मे निपुण। अगषट=सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा और वेदान्त।

८—विगसि जनु कोक किरन रवि=सूर्य की किरण देख कर मानो चकवा प्रसन्न हुआ हो। चक्रित=चकित, विभ्रान्त। उह जु

कवित्त

मन अति भयौ हुलास, बिगसि जनु कोक किरन रवि ।
अरुन अधर तिय सुघर, बिम्ब फल जानि कीर छवि ॥
यह चाहत चख चकित, उह जु तक्किय झरप्पि झर ।
चंच चहुट्टिय लोभ, लियौ तब गहित अप्प कर ॥
हरषत अनन्द मन महि हुलस, लै जु महल भीतर गई ।
पंजर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मँह रष्पत भई ॥९॥

दूहा

तिहीं महल रष्पत भइय, गई खेल सब भुल्ल ।
चित्त चहुँट्यो कीर सो, राम पढावत फुल्ल ॥१०॥
कीर कुंवरि तन निरखि दिखि, नखसिख लौं यह रूप ।
करता करी बनाय के, यह पदमिनी सरूप ॥११॥

कवित्त

कुट्टिल केस सुदेश, पौहप रचियत पिक्क सद ।
कमल गंध वय संध, हंस गति चलह मंद मद ॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नख स्वाति बुंद जस ।
भ्रमर भँवहि भुल्लहि सुभाव, मकरंद वास रस ॥
नैन निरखि सुख पाय सुक, यह सुदिन मूरति रचिय ।
उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रथिराज जिय ॥१२॥

तक्किय झरप्पि झर = वह ताक कर जल्दी से उस पर झपटा । चंच चहुट्टिय लोभ = लोभ के वश मे होकर उसने चोंच चलाई । गहित = पकड़ लिया । पंजर = पिंजड़ा ।

१०—चहुँट्यो = लग गया । राम पढ़ावत फुल्ल = बड़ी प्रसन्नता के साथ उसे राम नाम पढाने लगी ।

१२—कुट्टिल केस सुदेस, पौहप रचियत = उसके सुन्दर घुंघराले बालों मे फूल गुथे हुए थे । पिक्कसद = कोकिल के समान मधुर शब्द बोलती थी । स्वातिबुंद = मोती । स्वाति बुंद जस = उसके नख मोती के समान आबदार थे । वय सन्धि = वयः सन्धि, कौमार से यौवनावस्था मे परिवर्तन होने की अवस्था ।

दूहा

सुक समीप मन कुँवरि को, लग्यौ बचन के हेत।
अति विचित्र पडित सुआ, कथत जु कथा अमेत ॥१३॥

गाथा

पुच्छत बयन सुबाले, उच्चरिय कीर सच्च सचाये।
कवन नाम तुम देस, कवन यद्द करै परवेश ॥१४॥
उच्चरिय कीर सुनि बयनं, हिन्दवान दिल्ली गढ अयन।
तहाँ इन्द्र अवतार चहुवान, तहँ प्रथिराजह सूर सुभार ॥१५॥

पद्धरी

पदमावतीहि कुँवरी सँघत्त, दुज कथा कहत सुनि सुनि सुवत्त ॥१६॥
हिन्दवान थान उत्तम सुदेस, तहँ उदत द्रुग्ग दिल्ली सुदेस ॥१७॥
संभरि नरेस चहुवान थान, प्रथिराज तहाँ राजत भान ॥१८॥
बैसह बरीस षोड़स नरिंद, आजान बाहु भुअ लोक यद ॥१९॥
सभरि नरेश सोमेसपूत, देवंत रूप अवतार धूत ॥२०॥
सामंत सूर सब्बै अपार, भूजॉन भीम जिम सार भार ॥२१॥
जिहि पकरि साह साहाब लीन, तिहुँ वेर करिय पानीप हीन ॥२२॥

१३—अमेत = अमित, बहुत।

१४—यंद = इन्द (इन्द्र), राजा। कवन यद करै परवेश = कौन सा राजा राज्य करता है। सूर सुभार = भारी वीर।

१६—सब्रत्त = साथ, समत्त। दुज = (स० द्विज) पक्षी।

१८—थान = वश।

१९—बैसह (सं० वयस) उम्र। बरीस = वर्ष। यद = (सं० इन्दु) चन्द्रमा।

२०—धूत—(स० धृत) धारण किया।

२१—भूजॉन भीम जिम सार भार = उसकी विशाल भुजाओं मे भीम की भुजाओं के समान भारी बल है।

२२—साह सहाव = शाह शाहबुद्दीन। पानीप हीन = तेज हीन, कान्तिहीन।

सिगिनि सुसद्द गुन चढ़ि जँजीर, चुक्कै न सबद बेधत तीर ॥२३॥
बल बैन करन जिम दान मान, सत सहस सील हरिचंद समान ॥२४॥
साहस सुकम विक्रम जुवीर, दानव सुमत्त अवतार धीर ॥२५॥
दिस च्यार जानि सब कला भूप, कंद्रप्प जानि अवतार रूप ॥२६॥

दूहा

कामदेव अवतार हुअ, सुअ सोमेसर नंद ।
सहस किरन झलहल कमल, रिति समीप वर बिंद ॥२७॥

सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल बिधि अग ।
तन मन चित चहूँवान पर, बस्यो सुरत्तह रंग ॥२८॥

वेस बिती ससिता सकल, आगम कियो बसंत ।
मात पिता चिन्ता भई, सोधि जुगति को कंत ॥२९॥

कवित्त

सोधि जुगति को कंत, कियौ तव चित्त चहूँ दिस ।
लग्यौ विप्र गुर बोल, कही समझाय बात तस ॥
नर नरिंद नरपति, बडे गढ दुग्ग असेसह ।
सीलवन्त कुल सुद्ध, देहु कन्या सुनरेसह ॥

२३—सिगिनि सुसद्द गुन चढ़ि जँजीर = उसके धनुष पर लोह शृंखला की प्रत्यंचा चढ़ती है।

२४—बल बैन...हरिचंद समान = जो दान-सम्मान करने मे बलि, वेणु और कर्ण के बराबर है और शील में एक लाख हरिश्चन्द्र के समान है ।

२६—कंद्रप्प = (सं० कन्दर्प) कामदेव ।

२७—सुअ = (सं० सुत) पुत्र, बेटा । सहसकिरन = सूर्य । रिति समीप वर बिंद = रति के समीप मानो कामदेव शोभा देता है ।

२८—सुरत्तह = प्रेम ।

२९—ससिता = (सं० शिशुता) किशोरावस्था । आगम कियौ बसंत = युवावस्था प्रारम्भ हुई ।

तब चलन देहु दुज्जह लगन, सगुन ब्रद्ध दिय अप्प तन।
आनद उछाह समुदह सिषर, बजत नद्द नीसाँद घन ॥३०॥

दूहा

सवालष्य उत्तर सयल, कमऊँ गढ दूरंग।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिव्व अभग ॥३१॥

नारकेलि फल परिठ दुज, चौक पूरी मनि मुत्ति।
दई जु कन्या बुचन वर, अति आनन्द करि जुत्ति ॥३२॥

भुजग प्रयात

विहसिं वर लगन लिन्नौ नरिंद, बजी द्वार द्वार सु आनन्द दुदं ॥३३॥
गढंनं गढ पत्ति सब्र बोलि नुत्ते, आहूय भूप सब कटुंब सुत्ते ॥३४॥
चले दस सहस्स असब्बार दानं, परं पूरीय पैदल तेजु थानं ॥३५॥
मत्त मद गलित सै पंच दंती, मनों साँम पाहार बुग पंति पंती ॥३६॥
चले अग्गि तेजी जु तत्ते तुखारं, चौवरं चौरासी जु साकत्ति भारं ॥३७॥
कंठ नगं नूपं अनोपं सु लालं, रंग पच रंग ढलक्कंत ढालं ॥३८॥

३०—तस = उसे। असेसह = तमाम। नद्द = (सं० नाव) शब्द। धन = बहुत।

३१—सयल = समस्त, समग्र, सब। दूरग = दुर्ग, क़िला। द्रिब्ब = सम्पत्ति। अभंग = अटूट।

३२—नारिकेलि = नारियल। परठि = देखकर। मुत्ति = मोती। जुति = युक्ति।

३३—दुंदं (सं० दुन्दुभि) नगाड़ा।

३४—सुत्ते = सहित।

३५—जानं = बरात।

३६—मत्त मद गलितं सै पंच दती = पाँच सौ मदोन्मत्त हाथी। पाहार = (प्रा० पयोहर) बादल। हाथियों के दाँत ऐसे थे मानो काले बादलों मे बगुलों की पक्ति हो।

३७—तत्ते तुखार = तेज घोडे। चौवर = चँवर। चौरासी = चारों तरफ़। साकत्ति भार = भारी शक्ति वाले।

पञ्च सुरं सावद्द वाजित्र वाजं, महग महनाय भ्रग मोहि राजं ॥३६॥
समुद्र सिर सिखर उच्छाह छाह, रचित मंडप तोरन श्रीयगाह ॥४०॥
पदमावती विलखि वर वाल वेली, कहौ कीर सो वात तब हो अकेली ॥४१॥
झटं जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं, वरं चहुवान जु आनौ नरेसं ॥४२॥

दूहा

आनौ तुम्ह चहुवान वर अरु कहि इह संदेस।
सास सरीरहि जो रहे प्रिय प्रथिराज नरेस ॥४३॥

कवित्त

प्रिय प्रथिराज नरेस, जोग लिखि कग्गर दिन्नौ।
लगुन वग्ग रचि सरब, दिन द्वादस ससि लिन्नौ॥
से अरु ग्यारह तीस, साप संवत परमानह।
जो पित्री कुल सुद्ध, बरनि वरि रष्षहु प्रानह॥
दिष्षत दिष्ट उच्चरिय, वर इक पलक विलम्ब न करिय।
अलगार रयन दिन पंच महि, ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय ॥४४॥

दूहा

ज्यों रुकमनि कन्हर वरी, त्यों वरि संभरि कांत।
शिव मंडप पच्छिम दिसा, पूजि समय स प्रांत ॥४५॥
लै पत्री सुक यों चल्यौ, उड्यौ गगनि गहि वाव।
जहँ दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ठ जाम में जाव ॥४६॥
दिय कग्गर नृप राज कर, पुलि वंचिय प्रथिराज।
सुक देखत मन मे हँसे, कियो चलन को साज ॥४७॥

४०—रचित मंडपं तोरनं श्रीयगाहं=बड़े सुन्दर तोरण और मंडप बनाये गये।

४४—कग्गर=कागज। वरग=वर्ग। दिन द्वादस ससि=सुक्ल पक्ष की द्वादशी का दिन। से अरु ग्यारहतीस=११३०। परमानह=निश्चय ही। क्षत्रियकुल। दिष्षंत दिष्ट=आँखों से देखते ही। उच्चरिय=चल दीजिए, रवाना हो जाइये। अलगार=अलग ही अलग, दूसरी ओर से। रयन=रात्रि।

४५—से प्रांत=प्रातः काल मे।

कवित्त

उहै घरी उहि पलनि, उहै दिन बेर उहै सजि।
सकल सूर सामंत, लिये सब बोलि बंब बजि॥
अरु कविचंद अनूप, रूप सरसन वर कहं बहु।
और सेन सब पच्छ, सहस सैना त्रिय सष्षहु॥
चामंडराय दिल्ली धरह, गढ़ पति करि गढ़ भार दिय।
अलगार राज प्रथिराज तब, पूरब दिस तब गमन किय॥४८॥

दूहा

जादिन सिषर बरात गय, ता दिन गय प्रथिराज।
ताही दिन पतिसाह कौं, भइ गज्जनै अवाज॥४९॥

कवित्त

सुनि गज्जनै अवाज, चढयौ साहाबदीन वर।
खुरासॉन सुलतान, कास कांबिलिय मीर धर॥
जङ्ग जुरन जालिम जुझार, भुज सार भार भुअ।
धर धमकि भजि सेस, गगन रवि लुप्पि रेन हुअ॥
उलटि प्रवाह मनौ सिंधु सर, रुक्कि राह अड्डौ रहिय।
तिहि घरिया राज प्रथिराज सौं, चद वचन इहि बिधि कहिय॥५०॥

कवित्त

निकट नगर जब जांनि, जाय वर बिंद उभय भय।
समुद सिखर घन नद्द, इंद दुहुँ ओर घोर गय॥
अगिवानिय अगिवान, कुँअर बनि बनि हय सज्जति।
दिष्षन को त्रिय सबनि, चढ़ि गौरव छाजन रज्जति॥
बिलखि अवास कुँवरी वदन, मनो राहु छाया सुरत।
झंप्रति गवष्षि पल पल पलकि, दिखत पंथ दिल्ली सुप्रति॥५१॥

पद्धरी

दिष्षत पथ दिल्ली दिसाँन, सुख भयों सूक जब मिल्यो आन॥५२॥

४९—भइ गज्जनै अवाज = गजनी मे ख़बर मिली।
५१—मनो राहु छाया सुरत = मानो उसकी शोभा पर राहू की छाया पड़ गई हो। झंखति = झाँकती थी।
५२—सूक = तोता।

संदेस सुनत आनद नैन, उमगीय बाल मनमथ्य सैन ॥५३॥
तन चिटक चीर डारयो उतारि, मज्जन मयंक नव सत सिंगार ॥५४॥
भूषन मँगाय नख शिख अनूप, सजि सेन मनो मनमथ्य भूप ॥५५॥
सोव्रन्न थार मोतिन भराय, झलहल करंत दीपक जराय ॥५६॥
संगह सखिय लिय सहस बाल, रुकमिनिय ब्रेम लज्जत मराल ॥५७॥
पूजिय गवरि संकर मनाय, दच्छिनै अंग करि लगिय पाय ॥५८॥
फिर देखि देखि प्रथिराज राज, हँस मुद्ध मुद्ध कर पट्ट लाज ॥५९॥
कर पकरि पीठ हय पर चढाय, लै चल्यौ नृपति दिल्ली सुराय ॥६०॥
भइ खबरि नगर बाहिर सुनाय, पदमावतीय हरि लीय जाय ॥६१॥
बाजी सुबंब हय गय पलान, दौरे सुमज्जि दिस्सह दिगान ॥६२॥
तुम लेहु लेहु मुख जंपि जोध, हन्नाह सूर सब पहरि क्रोध ॥६३॥
अग्गे जु राज प्रथिराज भूप, पच्छे सु भयो सब सेन रूप ॥६४॥
पहुँचे सुजाय तत्ते तुरंग, सुअ भिरन भूप जुरि जोध जङ्ग ॥६५॥
उलटी जु राज प्रथिराज बाग, थकि सूर गगन धर धसत नाग ॥६६॥
सामंत सूर सब काल रूप, गहि लोह छोह वाहै सु भूप ॥६७॥
कम्मान बान छुट्टहिं अपार, लागंत लोह इम सारि धार ॥६८॥
घमसान घान सब बीर खेत, घन श्रोन बहत अरु रकत रेत ॥६९॥
मारे बरात के जोध जोह, परि रुंड मुंड अरि खेत सोह ॥७०॥

५३—उमगीय बाल मनमथ्थ सैन=बाला उमगित हुई, मानो कामदेव ने सेना सजाई हो।

५४—चिटक=मैला। नव सत=सोलह।

५६—झलहल करत दीपक जराय=झलमलाते हुए दीपक जलाकर।

५८—दच्छिनै अंग करि=प्रदच्छिणा करके।

५९—हँस मुद्ध मुद्ध कर पट्ट लाज—हँस कर के उस मोहित मुग्धा ने लज्जा से घूँघट निकाल लिया।

६२—पलान=चढ़कर।

६३—तुम लेहु लेहु मुख झंपि जोध=योद्धा 'पकड़ लो', 'पकड़ लो', पुकारने लगे। हन्नाह=कवच।

६७—गहि लोह छोह वाहै सु भूप=राजा बड़े उत्साह के साथ तलवार चलाने लगा।

६८—सारि धार=तलवार की धार।

दूहा

परे रहत रिन खेत अरि, करि दिल्लिय मुख रुक्ख ।
जीति चल्यौ प्रिथिराज रिन, सकल सूर भय सुक्ख ॥७१॥
पदमावति इम लै चल्यो, हरखि राज प्रिथिराज ।
एते परि पतिसाह की, भई जु आनि अवाज ॥७२॥

कवित्त

भई जु आनि अवाज, आय साहाब दीन सुर ।
आज गहौं प्रथिराज, बोल बुल्लंत गजत धुर ॥
क्रोध जोध जोधा अनंत, करिय पंती अनि गज्जिय ।
बॉन नालि हथनालि, तुपक तीरह स्रब सज्जिय ॥
पवै पहार मनो सार के, भिरि भुजान गजनेस बल ।
आये हंकारि हकार करि, खुरासान सुलतान दल ॥७३॥

भुजंग प्रयात

खुरासान मुलतान खंधार मीरं, वलक सो बलं तेग अचूक तीरं ॥७४॥
रुहंगी फिरंगी हलंब्बी समानी, ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी ॥७५॥
मॅजारी चखी मुक्ख जम्बक्क लारी, हजारी हजारी हकै जोध भारी ॥७६॥
तिनं पष्षर पीठ हय जीन सालं, फिरंगी कती पास सुकलात लालं ॥७७॥
तहाँ बाघ बाघं मरूरी रिछोरी, घन सार समूह अरु चौंर ढोरी ॥७८॥
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी, तुरक्की महाबान कम्मांन बाजी ॥७९॥
ऐसे असिवं असवार अग्गोल गोलं, भिरे भूप जेते सुतत्ते अमोलं ॥८०॥
तिन मद्धि सुलतान साहाब आप, इसे रूप सो फौज बग्नाय जापं ॥८१॥
तिन घेरिय राज प्रथिराज राज, चिहौं ओर घनघोर नीसान बाजं ॥८२॥

कवित्त

बज्जिय घोर निसॉन, रॉन चौहान चहौं दिस ।
सकल सूर सामॅत, समरि बल जंत्र मंत्र तस ॥

७३—धुर = धरा, पृथ्वी । नालि = बन्दूक । हथनालि = एक प्रकार की प्राचीन तोप जो हाथियों पर चलती थी ।
७६—मॅंजारी चखी = बिल्ली की सी आँख वाले । मुक्ख जम्बक लारी = गीदड़ और लोमड़ी के से मुखवाले ।
८०—असिव = अनिष्टकारी । गोलं = दल, समूह ।

उट्ठि राव प्रथिराज, बाग लग मनो वीर नट।
कढ़त तेग मनो बेग, लगत मनो बीज झट्ट घट ॥
थकि रहे सूर कौतिग गिगन, रगन मगन भइ श्रोन धर।
हृदि हरषि वीर जग्गे हुलस, हुरेउ रंगि नव रत्त वर ॥८३॥

दूहा

हुरेउ रंग नव रत्त कर, भयौ जुद्ध अति चित्त।
निस वासुर समुझि न परत, न को हार नह जित्त ॥८४॥

कवित्त

न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहि सूरवर।
धर उप्पर भर परत, करत अति जुद्ध महाभर ॥
कहीं कमध कहीं मथ, कहीं कर चरन अंतरुरि।
कहीं कंध वहि तेग, कहीं गिर जुट्टि फुट्टि उर ॥
कहीं दंत मंत हय खुर खुपरि, कुम्भ्रसुंडह रुंड सब।
हिंदवान रान भय भांन मुख, गहिय तेग चहुवांन जब ॥८५॥

भुजंग प्रयात

गही तेग चहुँवान हिंदवान रानं, गजं जूथ परि कोप केहरि समानं ॥८६॥
करे रुंड मुंड करी कुंभ फारे, बरं सूर सामंत हुकि गर्ज भारे ॥८७॥
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे, मद तजिय लाज ऊमंग मग्गे ॥८८॥
दौरि गज अध चहुवाँन केरो, घेरीय गिरद्द चिहो चक्क फेरो ॥८९॥
गिरद्दं उड़ी भांन अंधार रैनं, गई सुधि सुज्झै नही मज्झि नैनं ॥९०॥
सिर नाय कम्मांन प्रथिराज राजं, पकरियै साहि जिम कुलिंग बाजं ॥९१॥
लै चल्यौ सिताबी करी फारि फौजं, परे मीर सै पंच तहँ खेत चौजं ॥९२॥
रजंपुत्त पचास झुज्झे अमोरं, बजै जीत के नद्द नीसान घोरं ॥९३॥

८३—कौतिग = कौतुक। हृदि = हृदय में। हुरेउ = स्फुरित हुआ। रत्त = रक्त।
८५—कमध = कबंध, धड़। अंतरुरि = अँतड़ियाँ।
८८—कलप = (सं० कलाप) समूह। मदं तंजियं लाज ऊमंग मग्गे = मद, लाज उमंग को छोड़ कर (हाथी) भग रहे हैं।
९१-९३—कुलिंग = एक पक्षी; मुर्गा। सिताबी = शीघ्र। सै पंच = पाँच सौ। चौजं = चारों तरफ। अमोरं = न मुड़ने वाले; अडिग।

दूहा

जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै सग।
दिल्ली दिसि मारगि लगै, उतरि घाट गिर गग ॥९४॥
वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतॉन।
निकट नगर दिल्ली गये, प्रथीराज चहुँआॅन ॥९५॥

कवित्त

बोलि विप्र सोधे लगन्न, सुभ घरी परिट्ठिय।
हर बासह मडप बनाय, करि भावरि गठिय ॥
ब्रह्म वेद उच्चरहिं, होम चौरी जु प्रत्ति वर।
पद्मावती दुलहिन अनूप, दुल्लह प्रथिराज राज नर ॥
डड्यौ साह साहाबदी, अट्ठ सहस हय वर सुवर।
दै दॉन मॉन षटभेष को, चढ़े राज द्रुग्गा हुजर ॥९६॥

कवित्त

चढ़िय राज प्रथिराज, छॉड़ि साहाबदीन सुर।
निपत सूर सामंत, बजत निसान गजत धुर ॥
चद्र बदनि मृग नयनि, कलस लै सिर सनमुख जुख।
कनक थार अति बनाय, मोतिन बधाय सुख ॥
मडल मयक वर नार सब, आनद कठह गाइयव।
ढोरत चॅवर किक्कर करहिं, मुकट सीस तिक जु दियव ॥९७॥

दूहा

चढ़े राज द्रुग्गह नृपति, सुमत राज प्रथिराज।
अति आनन्द आनन्द सैं, हिंदवान सिरताज ॥९८॥

९६—परिट्ठय = परीक्षा कर के; देख कर के। हर बॉसह = हरे बाँस का। चौरी = विवाह मंडप। षटभेष = राजस्थान में यति, जोगी, सन्यासी, जंगम, चारण और ब्राह्मण षटभेस कहलाते हैं। षटभेष = षट्दर्शन, षट्वर्ण। डंड्यौ = दंड दिया; जुर्माना किया।

(२)

(घग्घर नदी का युद्ध)

कवित्त

दिल्लियपति प्रथिराज, अवनि आखेटक खिल्लिय।
साठ सहस असवार, जाइ लग्गा धर ढिल्लिय॥
धूनि धरा पतिसाह, रहे पेसोर सुथानय।
सथ्थ लिये सामंत, दिल्ली कैमास सु जानय॥
मृगया सु रमय प्रथिराज वर, गज्जन वै धर धग्गियै।
दूसरौ उद्र दिल्लेस वर, सुभर नरेस दिग सुम्भियै॥१॥

दूहा

गई खबर ध्रम्मान की, उट्ट चढ़े असवार।
दिल्ली धर लिजै तखत, दिसि गज्जनै पुकार॥२॥
प्रथीराज साजत पवँग, है गै नर भर भार।
दिल्ली पति आरोट चढि, कुहुकबान हथनारि॥३॥
डेरा करि पेसोर नृप, सहस सट्ठि सुभ वाज।
सोन पंथ बिच पथ दोइ, गल मज्जै अग्राज॥४॥

१—खिल्लिय = खेल रहा है। ढिल्लिय = दिल्ली। जाइ लग्गा धर ढिल्लिय = दिल्ली से साथ ले गया है। धूनि धरा पतिसाह = पृथ्वीपति धूनि साह अथवा पृथ्वीराज। पेसोर = गाँव विशेष (यह गाँव रोहतक जिले में है)। सुथानय = सुस्थान; सुन्दर स्थान। कैमास = पृथ्वीराज के मंत्री का नाम।

२—ध्रम्मान = धर्मायन नामक व्यक्ति।

३—पवँग = घोड़े, नौका। है = हय, घोड़ा। गै = गय, हाथी। नर — पैदल सेना। भर भार = पूरा सामान, सब प्रकार का सामान। कुहुकबान = एक तरह का बाण जो बाँस की कई पट्टियाँ जोड़ कर बनाया जाता है, जिसके चलते समय कुछ शब्द निकलता है। अतएव 'कुहक' शब्द करने वाला बाण विशेष। हथनारि = एक प्रकार की प्राचीन तोप जो हाथियों पर चलती थी।

४—सहस सट्ठि सुभ वाज = साठ हजार अच्छे घोड़े। सोन पंथ = सोनपत, स्थान विशेष। पथ दोइ = दो रास्ते। गल मज्जै अग्राज = आगे वाले मार्ग से जाइये।

कवित्त

गौरी पठए दूत, चले च्यारो चतुरन्नर।
लीय पत्ररि प्रथिराज, चले पच्छे गज्जन घर ॥
किय सलाम जब दूत, तबहिं तत्तार सुबुज्झिय।
कहा करत दिलेस, चढ़त गिरवर धर धुज्जिय ॥
सँग सतषट्ठ सामंत चलि, तीन पाव लष्षह तुरी।
अनि सूरवीर नर वर सकल, चुड़ी षेह धर उप्परी ॥५॥

आषेटक दिन रमयं, सग स्वान घन चीते।
नावक पावक विपुल, जक्कि दिन जामह जीते ॥
साहस तुरी बग्घह सु, सत मेधा कलि कठिय।
सीहगोस पुच्छिय सु, लम्ब सिरपा सिर पुट्ठिय ॥
जुर्रा रु बाज कूही गुहा, धानुक्की दारू धरा।
बहु काल भाल वदक बिला, जम भय तव जित्तिय धरा ॥६॥

कवित्त

रमै राज आषेट, सत्त एकल बल भजै।
पञ्च पथ्थ परिगाह, रग अप्पन मन रजै ॥

५—बुज्झिय = पूछा। चढ़त गिरवर धर धुज्जिय = चढ़ते ही पहाड़ और पृथ्वी काँप उठते हैं। सतषट्ठ = ६७। तीन पाव लष्षह तुरी = सवा तीन लाख पैदल सेना। अनि = अन्य, दूसरे।

६—रमय = रमते हैं, खेलते हैं। घन = बहुत। नावक पावक...... जीते = बहुत से मल्लाह और तैराक उनके साथ हैं और उन्ही के बीच में उनका दिन बड़े आनंद से व्यतीत होता है। मेघा = श्यामा पक्षी। कल कंठिय = मधुर कंठ वाले। सीहगोस = पक्षी विशेष (सारस)। पुच्छिय = पुछार, पूँछवाला। लंब...... पुट्ठिय = पीठ की तरफ सिर रखने वाले कबूतर आदि पक्षी। जुर्रा, बाज, कूही, गुहा = ये पक्षियों के नाम हैं। धानुक्की = धनुर्धारी। दारू धरा = बंदूक अथवा तोप चलाने वाले। बहु काल.. बिला = बहुत काल से समय को देख रहा है। जम भय . . धरा = यमराज के समान भयंकर वह तुम्हारी पृथ्वी को जीतेगा।

सहस एक वाजित्र, सूर किरनह संपेपै।
सुनि गौरी साहाव, दाह दिल महन विसेपै ॥
जितौव जव्व प्रथिराज को, तव तसवी कर मडिहौ।
टामक सद्द नद्दह करौ, जुगति साह तव छडिहौ ॥७॥

दूहा

देस देस कग्गद फटे, पेसगी पुरसान।
रोम हवस अरु वलक मे, फट्टे पहु अप्पान ॥८॥

कवित्त

सिलह लोह सज्जत, लग्ग पंचह मिलि पप्पर।
कूच कूच परि पैर, गुरज धारी लग गप्पर ॥
कोस दह दह कूच, आइ गिरवान सपत्तौ।
दौरि दूत दिल्लेस, जाम कर त्रय दिन वित्तौ ॥
मुक्काम कियो प्रथिराज नृप, तहा पवरि करि दूत सव।
गौरी नरिंद हैं गै सुभर, सजि आयौ उप्पर सु अप ॥९॥

७—सत्त = सात। एकल = अकेला। पंच पथ्थ = पाँच मार्ग (पूर्व, पश्चिम आदि चार दिशाएँ और पाँचवाँ आकाश)। पंच...... रंजै = पाँचों मार्गों को रोक कर उनके मध्य मे अपने मन को प्रसन्न करता है। वाजित्र = वाजे। सूर किरनह संपेषै = जिसमें सूर्य्य की किरणों के समान तेज दिखाई पड़ता है। गौरी साहाव = शहाबुद्दीन गौरी। दाह दिल महन विसेषै = दिल मे वहुत जलन हुई। जितौव = जीत लूँगा। तसवी = माला। टामंक = नगाड़े। सद्द नद्दह = जोर का शव्द। जुगति साह तव छंडिहौं = तव तक के लिये मैं शाही युक्तियों (राजसी भोग) को छोड़ दूँगा

८—पेसंगी पुरसान = खुरासान की पेशवाई के लिये अर्थात् गौरी की सहायता के लिये।

९—सिलह = हथियार। पप्पर = पख्खर जाति के योद्धा। गप्पर = गख्खर जाति के योद्धा। गिरवान = स्थान विशेष। सपत्तौ = पहुँचे। सुभर = सामान। जामकर त्रय दिन वित्तौ = विश्राम कर के तीन दिन के व्यतीत होते ही।

कवित्त

चैत मास रवि तीज, सेत पष्षह कल चंदह।
भयौ सुदिन मध्यान, चढयौ प्रथिराज नरिंदह॥
कटक सबर हिल्लोर, भार सेसह करि भग्गिय।
चढि सामत सकज्ज, नद्द सुर अमर जग्गिय॥
गज रोर सोर बघे घटा, सिलह बीज सिलकावलिय।
पप्पीह चीह सहनाइ सुर, नदि घग्घर मेलान दिय॥१०॥

दूहा

आयौ आतुर उप्परह, पैसंगी पतिसाह।
पच्छाई बादल प्रबल, भग्गे राह विराह॥११॥
बरन बरह तहँ देषिये, घटा रव गजराज।
सन्नाहा सन्नाह रजि, पष्षर सष्षर साज॥१२॥
भई हलोहल सेन सब, पान व्यूह वर खेत।
लष्ष एक भर अग मैं, छत्र धरयौ सिर सेत॥१३॥
हुअ टामक सु दिसि विदिसि, हुअ सनाह सनाह।
हुअ हलोहल सुम्भरन, दोऊ दिन इक राह॥१४॥

१०—सेत पष्षह = शुक्ल पक्ष। करि = दिग्गज। अंमर = आकाश। चढ़ि. जग्गिय = सामंतों के उत्साह पूर्ण शब्दों से स्वर्ग और आकाश गूज उठे। सिलह बीज = शस्त्रों के बीच मे। सिलकावलिय = मोती की लड़ियाँ। चीह = चीख़, चीत्कार।

११—राह विराह = इधर उधर।

१२—सन्नाहा सन्नाह रजि = सेना को कवच पहना कर। पष्षर = पाखर भूल।

१३—हलोहल = हलचल। पान व्यूह वर खेत = अच्छे रण-क्षेत्र मे सेना को पान के आकार मे खड़ा किया। लष्ष एक भर अंग मे = एक लाख सेना के बीच में।

१४—टामंक = नगाडे। हुअ संनाह = सेनापतियों सहित अब लोगों ने कवच पहन लिये। सनाह = स + नाह = अधिपतियों सहित। सुम्भरन = सपूर्ण सेना मे। दोऊ दिन इक राह = दोनों दीन (हिंदू और मुसलमान) एक मार्ग पर थे अर्थात् दोनों ही जीत के लिये लालायित थे।

त्रोटक

हुअ सद्द सुगद्दह नद्द भर, घन वेरिक कीय सु फौज वर।
लष लष्य मिले दल समिलय, नग भद्दव वाह्ल समिलिय ॥१५॥
सु अग्गे हथनागि अपार गज, तिन देषत कायर दूर भजं।
तिन पिट्ठ हजारउ मत्त चले, छर रित्त भरत करी निहले ।।१६॥
तिन पिट्ठ फौज गहव्वरय, धरि गोरिय मुट्ठ कर धरिय।
कमनेत अभूल सु लप्प लिय, तिन मध्य ततारह छत्र दिय ॥१७॥
लष टोय गुरज्ज न गष्परिय, पुरसान दियं दल पष्परियं।
बलकी उमराव सु मत्त सय, निसुरत्तह लप्पह कम्म भय ॥१८॥
पुरसान तन दल उप्पट्टय, मनु सायर सत्त उलट्ट भय।
जलवानिय पानिय अट्ट गर, लोहानिय पानिय खेतवरं ॥१९॥
हबसी उजबक्क हमीर भर, कलवानिय रूमिय अग्ग धर।
सरवानि ऐराकि मुगल्ल कती, बहु जाति अनेक अनेक भती ॥२०॥

१५—सद्द = शब्द। लप लष्य.. संमिलिय = लाख लाख मनुष्यों का बना हुआ दल भादों के मेघों की तरह शोभायमान था। वाह्ल = बादल।

१६—सुअग्गे = अग्र भाग में। तिन पिट्ठ = उनके पीछे।

१७—गहव्वरय = बड़ी। धरि. धरियं = उस के सिर (मुट्ठ) पर गोरी ने हाथ रखा अर्थात् उसके सेनापति गोरी बने। कमनेत = धनुर्धारी। अभूल = अभूल जाति के। तिन मध्य...दियं = उनके मध्य में तातारखा ने छत्र धारण किया अर्थात् तातारखा उनका सेनापति बना।

१८—गुरज्ज = गुर्जधारी। सत्त सय = सात सौ। निसुरत्तह = निसुरह जाति के योद्धा। बलकी उमराव = बलकानीय उमराव। भयं = हुआ।

१९—पुरसान...भयं = खुरासानियों का दल चला, वह ऐसा मालूम होता था मानो सातों समुद्र उलट रहे हों। जलवानिय = जलकान जाति के लोग। लोहानिय = लोहाना जाति के लोग। खेतवरं = रणभूमि में उपस्थित थे।

२०—हबसी, उजबक, हमीर, कलवानी, रूमी, सरवानी, ऐराकी, मुग़ल आदि मुसलमानों की जातियों के नाम हैं।

कवित्त

फौज बधि सुरतान, मुष्ष अग्गे तत्तारिय।
मधि नायक्क सुरतान, नील षुरसान सु भारिय॥
मोती निसुरति षान, लाल हबसी कोलजर।
पाछि-पीठि रुस्तम, पना बहु भाँति अवर नर॥
उत्तरिय नद्द गोरीस पहु, बजा दस दिसि बज्जिया।
मानों कि भद्द उलटी मही, साइर अबु गरज्जिया॥२१॥

दूहा

दिल्लीपति फौजह रची, दियौ जैत सिर छत्र।
चामडराय अग्गै भयौ, मनों सु गिरवर गत्त॥२२॥

कवित्त

फौज रची सामत, गरुड व्यूहं रचि गढ्ढिय।
पंष भाग प्रथिराज, चंच चावंड सुगढ्ढिय॥
गावरि अत्ताताइ, पाइ गोइंद सुठढ्ढिय।
पुच्छ कन्ह चौहान, पेट पम्मारह पढ्ढिय।
सुंडाल काल अग्गो धरे, कढे दोइ कलहन्न किय।
चालंत बान गोरे प्रबल, मानहु अंधकि मार दिय॥२३॥

२१—तत्तारिय=तातार खाँ। मधि नायक=मध्य भाग का नायक। सुरतान=सुलतान गौरी। नील=नीलम मणि। निसुरति षान=निसुरत्ति खाँ। लाल हबसी कोलजर=हबसी और कालिंजर लाल के समान। पना=पन्ना।

२२—जैत=जैतराय पँवार। गत्त=शरीर।

२३—गरुड़ व्यूहं रचि गढ्ढिय=गरुड व्यूहाकार मे खडा किया। पंष भाग प्रथिराज=पख भाग मे पृथ्वीराज रहे। चच चावड सुगढ्ढिय=चोंच भाग मे चामुडराय नियुक्त हुआ। गावरि=गर्दन। अत्ताताइ=अत्ता-ताई (नाम विशेष)। पाइ गोइद सुठढ्ढिय=चरण भाग में गोइन्द राय ठहरे। कन्ह=यह पृथ्वीराज का चाचा था। पेट पम्मारह पढ्ढिय=उदर भाग परमार वंशी वीर (जैतराय) के अधीन रहा। संडाल काल=मदोन्मत्त हाथी। कढे दोइ कलहन्न किय=दोनों

तत्तारह उप्परह, चित्त चावंड चलायौ।
दुहू फौज अग्गज, दुहूं भुज भार भलायौ॥
मीर बान वरपंत, धार धारा हर लग्गौ।
वाही चामंडराय, भूमि तत्तारह भग्गौ॥
उत्तरे मीर से पञ्च दुइ, दाहिम्मै किन्नौ दहन।
पहिले जु झुज्झ दिन पहिलके, मच्यौ जुद्ध जानें महन॥२४॥

कवित्त

भूमि पर्यो तत्तार, मारि कमनेत प्रहारै।
एक घाव दोइ टूक, परे धारन मुहु धारै॥
पुर वज्जै पुरतार, चमकि चामड चलायौ।
भरै वथ्थ मिर हथ्थ, एक वहु लष्पन धायौ॥
जब परै वूद तब वीर हुअ, सत्त घरी साहस धरै।
तिनमा कटक्क त्रिविधी घड़ा, एक एक पग अनुसरै॥२५॥

तरफ से निकल कर सेनाएँ युद्ध करने लगीं। चालंत... दिन = गोरी की सेना पर ऐसे प्रबल बाण पड़ते थे, मानों आँधी का धक्का लग रहा हो।

२४—चित्त चावंड चलायौ = चामुड राय ने मारना चाहा। अग्गंज = आगे बढ़ कर। भलायौ = दिखाया। मीर = मुसलमान। धार धारा हर लग्गौ = मानों मुसलाधार वर्षा होने लगी हो। से पञ्च दुइ = पाँच सौ के दूने; एक हजार। दाहिम्मै = दाहिम्म नामक सामत ने। किन्नौ दहन = जला दिया; मार दिया। पहिले महन = पहले दिन का पहला ही युद्ध ऐसा भयंकर हुआ कि मानों समुद्र मंथन के समय का (देवासुर-सग्राम)।

२५—मारि कमनेत प्रहारै = बाण मार कर प्रहार करता है। पुरतार = घोड़े के पाँवों की नाल। एक वहु लष्पन धायो = अकेला ही बहुतों को लक्ष्य कर दौड़ा। त्रिविधी घड़ा = गर्मी के दिनों में शिवजी की मूर्ति के ऊपर लकड़ी की तिपाई (त्रिपदिका) बना कर, उस पर जल का घड़ा रख देते है। इस घड़े के पेंदे में एक छोटा-सा छेद बना कर उसमे कपड़े

पान पान आखूद, अट्ठ सहस बहु गष्पर।
परिय पति अवनेस, पारि बहु अष्पर गष्पर॥
हयौ नेज चामड, वीर दो सहस लरै भर।
हस्ति एक बिन दंत, तमह तिन मथौ सहस कर॥
दाहिम्मराय मुरछ्यौ पर्यौ, दौर्यौ जैत महा बलिय।
मानों कि अग्ग जज्जर वही, कलि मभ्भे रिन वट कलिय॥२६॥

कवित्त

धपी सेन सुरतान, मुट्ठि छुट्टी चावद्दिसि।
मनु कपाट उद्धर्यौ, कहू फुट्टिय दिसि बिद्दिसि॥
मार मार मुप किन्न, लिन्न चावड उपारे।
परे सेन सुरतान, जाम इक्कह परि धारे॥
गल वथ्थ धत्त गाढौ ग्रह्यौ, जानि सनेही भिट्टयौ॥
चामंडराइ करि वर कहर, गौरी दल बल कुट्टयौ॥२७॥
जैतराइ जडधार, लियो कर दत मुष्ष कर।
परे वज्र सिर धार, मनों सेना सिर उप्पर॥
पुरसानी बगाल, मनहु डड्डूर रमावै।
भरै पत्र जोगिनी, डक्क नारद्द वजावै॥
अपछरा गीत गावत इला, तुवर तंत बजावहीं।
सुरतान सेन दिल्लेस वर, मग्ग मग्ग जस गावहीं॥२८॥

की वत्ती डाल देते हैं जिससे थोड़ा थोडा पानी दिन भर गिरता रहता है। तिनमा . अनुसरै = वीरों के मध्य में चामुंडराय त्रिविधी घडे की भॉति एक एक पॉव आगे बढना था।

२६—षान पान = खानखानां। आखूद = नाम विशेष। नेज = नेजा। मानों कि अग्ग जज्जर बही = मानो आग सूखे बाँसों को जला रही हो।

२७—धपी = तृप्त हो गई, लडाई से घवड़ा गई। मुट्ठि छुट्टी चावद्दिसि = चारों दिशाओं मे मूठ छूट गई, तितर बितर हो गई। कूह फुट्टिय = कुहराम मच गया। वथ्थ = वस्त्र। जानि सनेही भिट्टयौ = मानो कोई वडा स्नेही मिला हो। कहर = हलचल। कुट्टयौ = पीटा, परास्त किया।

२८—जडधार = तलवार की धार, खड्ग प्रहार। पत्र = पात्र,

कवित्त

सिर धूनत पतिसाह, धाह सुनि सेना सथ्थिय ।
लुथ्थि लुथ्थि मुह धार, परे वथ्थन सों वथ्थिय ।
जम सों जम आहुरै, सूर छुट्टै दोइ छुट्टै ।
नंठ गठि तन जोग, सूर मुंडावलि छुट्टै ॥
खुरसान जैत अब्बू धनिय, धार धार मुह कट्टिया ।
ऐसो न युद्ध दिष्यौ सुन्यौ, दारुन मेछ दवट्टिया ॥२९॥

मनु द्वादस सूरज्ज, हथ्थ चन्द्रमा महासर ।
जिन उप्पर झलमले, ताहि धर गोरिय सुम्भर ॥
कटक कूह किलकार, सार परमार बजायौ ।
भिरि भज्यौ सुरतान, एक एकह मुष धायौ ॥
सिर मार धार बुढ्यौ प्रहर, तब दौरयौ पज्जून भर ।
निसुरत्तिखान लग्गह बली, लग्ग एक पाइल सुभर ॥३०॥

भुजंगी

मचे कूह कूह बहै सार सारं, चमक्कैं चमक्कैं करार सुधार ।
भभक्कै भभक्कै बहै रत्त धार, सनक्कै सनक्कै बहैं बान भार ॥३१॥

डक्क = वीणा । इला = सरस्वती । तुवर तंत = वीणा के तार ।

२९—धाह = आवाज । लुथ्थि = लोथ । परे वथ्थन सों वथ्थिय = खून से लथपथ होकर वस्त्र से वस्त्र चिपक गये थे । जम सों जम आहुरै = मानों यमराज से यमराज भिड़ गये हों । मुंडावलि = शिर । अब्बू धनिय = आबू का स्वामी । जैत = जैतराय । धार धार मुँह कट्टिया = तलवार की धार से मुँह काट दिये । दारुन मेछ दवट्टियाँ = म्लेच्छों की भारी सेना दब गई ।

३०—द्वादस = बारह । सूरज्ज = सूर्य्य । हथ्थ चन्द्रमा महासर = हाथ मे बडा धनुप चंद्रमा के समान दिखाई पडता था । सार = तलवार । पज्जून = पज्जूनराय । पाइलसुभर = श्रेष्ठ पैदल सेना ।

३१—मचे कूह कूहं = कुहराम मच गया । बहै सार सार = सर सर

हबक्कै हबक्कै बहै सेल भेलं, हलक्कै हलक्कै मची ठेल ठेल ।
कुकै कूक फूटी सुरताज ठानं, बकी जोग माया सुर अप्प थानं ॥३२॥
बहै चट्ट पट्टं उघट्ट उलट्ट, कुलट्टा धरै अप्प अप्पं उहट्ट ।
दडक्कं बजै सथ्थ मथ्थ सुट्टं, कडक्कं बजै सेन सेना सुघट्टं ॥३३॥
बहै हथ्थ परमार' सिरदार सारं, परे सेन गोरी बहै रत्त धारं ।
परयौ षान निसुरत्ति सेना सहित्तं, हुश्रौ सूर मध्यान दिल्लेस जित्त ॥३४॥

कवित्त

कालजर इक लष्ष, सार सिंधुरह गुड़ावै ।
मार मार मुष चवै, सिंघ सिंघा मुष धावै ॥
दौरि कन्ह नर नाह, पटी छुट्टी अंपिन पर ।
हथ्थ लाइ किरवार, रुडमाला निन्निय हर ॥

की आवाज़ करती हुई तलवारे चलने लगीं । करारं सुधारं = तेज धारे चमकने लगी । भभकै भभकै बहै रक्त धार = खल् खल् शब्द के साथ रक्त की धाराएँ प्रवाहित होने लगीं । सनक्कै सनक्कै बहै बान भार = बाणों का समूह सनासन चलने लगा ।

३२—हबक्कै हबक्कै बहै सेल भेल = हबक हबक कर भाले घुसने और निकलने लगे । हलक्कै हलक्कै मची ठेल ठेलं = हाय-हाय और ठेला ठेल मच गई । कुकै कूक फूटी = सुरतान की सेना मे कुहकार फूट उठी ।

३३—बहै चट्ट पट्टं उघट्टं उलट्टं = बड़ी फुर्ती के साथ (वीर गण) उलट-पलट कर (इधर-उधर) हथियार चलाने लगे । दंडक्कं बजै = धनुष की टकार होने लगी । मथ्थं सुटट्टं = कटे हुए मस्तकों का ढेर लग गया । कडक्क बजै सेन सेना = सेना मे कडाका बज गया अर्थात् आतंक छा गया । सेना सुघट्ट = सेना मे संघर्ष होने लगा, मुठभेड़ हो गई ।

३४—हुश्रौ सूर मध्यान दिल्लेस जित = मध्यान्ह काल तक दिल्ली-पति पृथ्वीराज की जीत हो गई ।

बिहु बाह लग्ग लौहे परिय, छाति करिव्वर टाह किय।
उच्छारि पारि धरि उप्परें, कलह कियौ कि उघान किय ॥३५॥

भुजंगी

छुटी अंपि पट्टी मनो उग्गि सूरं, गिरं कायरं सूर बढ्ढे सनूरं।
लियं हथ्थ करिवार भंजे कपारं, पियै जोगनी पत्र कीयै डकारं ॥३६॥
बहे अच्छरी हथ्थ अनेक सथ्थं, करं सूर संम्हालिय घल्लि बथ्थ।
करै कज्ज साईं समप्पै सुघट्टं, लियं कन्ह गोरी तनं मारि थट्टं ॥३७॥

कवित्त

कालउार जब परिय, भगिय सेना पतिसाहिय।
पञ्च फौज एकट्ठ, कन्ह करवारि सम्हारिय ॥
धर पारे बहु मीर, सथ्थ जब सेना भग्गिय।
गर धत्ती कमान, लियो गोरीय उछग्गिय ॥

३५—कालजर = मुसलमानो की एक जाति विशेष, सेनापति का नाम। सार सिंधुरह गुड़ावै = श्रेष्ठ हाथियों को घुमाते हुए। चवै = कहते हुए। पटी छुट्टी अंपिन पर = कन्ह की आँखों पर से पट्टी उतार ली गई। कन्ह = ये पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के सगे भाई थे। इनका प्रण था कि अपने सामने ये किसी को भी मूछों पर हाथ फेरते हुए न देखेंगे। इस संबन्ध मे ये कई लोगों से झगड़ भी चुके थे और कइयों को मार भी डाला था। इस तरह के झगड़ों का अंत करने के लिये पृथ्वीराज ने इनकी आँखों पर पट्टी बँधवा दी थी जो सिर्फ लड़ाई के वक्त उतारी जाती थी किरवान = कृपाण। हर = महादेव।

३६—मनो उग्गि सूरं = मानो सूर्य निकला हो। सूर वढ्ढे सनूरं = वीरों मे उत्साह उमड़ आया। करिवार = तलवार। पियै जोगिनी पत्र = योगिनी पात्र भर भर कर (रक्त) पीने लगी। कीयै डकारं = तृप्त होकर डकार लेने लगी।

३७ = अच्छरी = अप्सराएँ। लियं कन्ह गोरी तनं मारि थट्ट = कन्ह ने मार मार कर यवनों के ठट्ट लगा दिये और गोरी को जा दबाया।

उत्तरे मीर पच्छे फिरे, हाय हाय मुष हुंकरयौ ।
पज्जून भेलि मुष मीर कौ, कन्ह लेइ गोरी वरयौ ॥३८॥

जनु उद्यान हलाइ, पवन चल्लै ज्यौ वाधै ।
त्यौ पज्जून नरिंद, मीर जमदड्ढै साधै ॥
परे मीर सै सत्त, विए रनछडिव भज्जे ।
चामर छत्र रषत्त, तषत लुट्टे ज्यो सज्जे ।
कान्हा नरिंद पतिसाह ले, गयौ थान अप्पन अलिय ।
पंमार सिंध लग्यौ सुपय, चाव भाव कीरति चलिय ॥३९॥

कवित्त

रहै कन्ह अजमेर, गयौ चहुआन जैत लिय ।
धरिअ ग्गोरी नरिंद, दौरि प्रथिराज सुद्ध दिय ॥
गयौ अप्प अजमेर, लिये पतिसाह नरिंदह ।
दिन किज्जै महिमान, पास ठढ्ढा रहे वृंदह ॥
बैठारि तषत सिर छत्र दिय, सभा विराजे सु पहुँभर ।
सिर फेरि षैर दिज्जै दुनी, यौं रष्षै पतिसाह दर ॥४०॥
एक लष्ष बाजित्र, सहस तीनह मय मत्तह ।
लष्ष एक तोषार, तेज ऐराकी तत्तह ॥

३८—धर पारे वहुमीर = बहुत से मुसलमानो को धराशायी किये । गर धत्ती कंमान = गले मे कमान डाल कर । उछग्गिय = उछल कर । पज्जून भेलि मुख मीर कौ = पज्जूनराय ने यवनों को सामने से रोक लिया । वर्‌यौ = बढा, गया ।

३९—हलाइ = हिलाकर । मीर जमदड्ढै साधै = मीरों को यमराज की दाढ से साधने लगा अर्थात् मार मार कर यवनों को यमलोक पहुँचाने लगा । सै सत्त = सात सौ । विए = दूसरे । चाव भाव कीरति चलिय = प्रेम पूर्वक हाव-भाव करती हुई कीर्ति चली; चारों ओर विजय का यश फैल गया ।

४०—धरिअ ग्गोरी = गोरी को पकड़ कर । दौरि प्रथिराज सुद्ध दिय = दौड़ कर पृथ्वीराज को सूचित किया । दिन किज्जै महिमान = दिन मे आतिथ्य किया जाता । पास ठढ्ढा रहै वृंदह = झुंड के झुंड पास खड़े रहते ।

आराबा रथ्थिनी, सत्त से सत्त सु भारिय।
चामर छत्र रपत्त, साहि लिन्निय वर सारिय॥
सामंत सूर बहु विधि भग्गि, पट्टे घाव सु वंधियै।
सन तीन मोलि सगर धनी, वज्जे अनत सु वज्जिय॥४१॥

कवित्त

रची सभा प्रथिराज, सूर सामंत बुलाए।
गोयंदद निट्ठुर सलष, कन्ह पतिसाह पठाए॥
करौ दड सिर छत्र, राम प्रोहित पुंडीरह।
रा पज्जून प्रसंग, राव हाहुलि हमीरह॥
इत्तने मत्त सम्भूकर मिले, हम मारैं छोरैं न अब।
है है न हास्य अबके हमैं, फिर न आइहै इह सु कब॥४२॥

दिये देस पंधार, दिए पछिवान सार।
कासमीर कविलास, दिए धरटिला पहार॥
गज्जन रप्पै देस, दियो समपै प्रथिराजह।
नातर छुट्टै नाहिं, करैं हम उप्पर काजह॥
बोल्यौ कन्ह नरनाह सुनि, अबकैं मारैं कोइ नहि।
पजाब दियौ छुट्टै सु अब, यह हमीर दिज्जै हमहि॥४३॥

४१—वाजित्र = वाजे। सहस तीन मय मत्तह = तीन हजार मदोन्मत्त हाथी। तोषार = घोड़े। ऐराकी = ऐक देश के। चामर...... सारिय = चामर, छत्र आदि सब सामान गोरी को पकड़ने के बाद पृथ्वीराज ने अपने अधिकार मे कर लिया। पट्टे घाव सु वंधियै = घावों के पट्टियाँ बँधवाई। वज्जे अनत सु वज्जिय = जीत के अनन्त वाजे वजवाये।

४२—इतने मत्त.. .. अब = इतनों ने एक मत होकर कहा कि अब की बार हम गोरी को मारेंगे, छोड़ेंगे नहीं। है है न हास्य = हमारी हँसी न होगी। फिर न आइहै इह सु कब = यह भी फिर कभी न आवेगा।

४३—पंधार = कधार, अफगानिस्तान का एक नगर। पछिवानं सारं = समस्त पश्चिम देश। कासमीर कविलास = काशमीर, कावुल आदि। धरटिला = पृथ्वी के टीले। गज्जन रप्पै

कवित्त

तब बुल्यौ प्रथिराज, कहे काका त्यौं किज्जिय ।
जेता रञ्जक होइ, तिता लादा भरि लिज्जिय ॥
जग्य कियौ पडवन्न, हेम काचौ उन आन्यौ ।
त्यौं लभ्यौ पतिसाहि, लष्ष लोहा हम मान्यौ ॥
करि दंड कन्ह पतिसाह को, लोहानौ सथ्थै दियौ ।
असवार सहस सथ्थे चले, कर सिर कन्ह इतौ कियौ ॥४४॥

करि जुहार तब कन्ह, कयौ अजमेर दुरग्गह ।
तज्यौ कन्ह पतिसाह, बत्त सब जपी अप्पह ॥
ह्वै षुसाल गजनेस, दई इक लाल सहित मनि ।
कन्ह लेइ पतिसाह, गयौ दिल्ली सु ततच्छन ॥
मनुहार करिय सामन्त सब, तेग दई दिल्लेस बर ।
दो अश्व करी दोइ देय करि, साहि चलायौ अप्प घर ॥४५॥

कवित्त

करि सलाम गजनेस, करिय नव निह दिल्लेसर ।
तम रष्यिो हम प्रीति, बरप मन सत्तह केसर ॥
पेसगी धर सीम, बीच पौरान कुरानं ।
जा तक्कौ तुम अबे, तबै तुम कढियौ प्रानं ॥
उत्तरौ अटक तौ मैं अवर, मुसलमान नाहीं धरौं ।
तुम हम सु प्रीति चलिहै बहुत हूँ न अबै ऐसी करौं ॥४६॥

देस = ग़जनी देश को अपने पास रखे। बियौ समपै प्रथि-राजह = दूसरे सब पृथ्वीराज को दे दे।

४४—जेता रंजक होइ = जितनी इच्छा हो। पडवन्न = युधिष्ठिर, भीम आदि पांडवों ने। हेम काचौ = कच्चा सोना। लष्ष लोहा हम मान्यौ = एक लाख का दंड लेकर छोड़ देना हम ठीक समझते है। लोहानौ = लोहाना नामक बीर को।

४५—बत्त सब जंपी अप्पह = अपनी सब बात कह सुनाई। ह्वै षुसाल = प्रसन्न होकर। दो अश्व करी दोइ देय करि = दो घोड़े, दो हाथी देकर।

४६—करिय नव निह = नमन किया, सलाम किया। बरप. . .

पहु चल्यौ सुरतान, दियो लोहानी सथ्थे ।
दूत च्यारि अनुसार, काल छुट्यौ से हथ्थे ॥
गयौ वीर सोलान, अटक उत्तरि इन पारं ।
सोवन पंथ मैदान, सहस सम्हे असवारं ॥
निसुरत्ति सुतन दरिया सुतन, आइ कियौ सलाम तहाँ ।
अजान बाह गहिमान किय, चल्यौ अप्प गज्जन रहाँ ॥४७॥

कवित्त

रयसल हरी नवट्ट, सहस अट्ठारह सथ्थे ।
डेरा करि पतसाह, पुले लग्गा इन पथ्थे ॥
दूत च्यार अनुसार, कटक देख्यौ असवारह ।
कह्यौ चरन सब सथ्थ, सहस दोइ सेना सारह ॥
तिन बार बज्जि त्रंबाल बहु, सिलह सज्जि सिरदार सहु ।
उतरयौ कटक छोरिय अटक, नदि हुऔ उग्गंत बहु ॥४८॥

केसर = हे केसरी ! तुम सच्चे मन से हम पर प्रीति रखना । पेसंगी......आनं = पुराण और कुरान को बीच मे लेकर गोरी ने प्रतिज्ञा की कि जो यदि फिर कभी आप की तरफ देखूँ अर्थात् आपके राज्य पर आक्रमण करूँ तो प्राण दंड देना ।

४७—पहु चल्यौ सुरतान = प्रभु सुलतान चला । काल छुट्यौ से हथ्थै = मानो मौत के हाथों से निकल कर चला । सोवन पंथ ......असवारं = सोवन पथ के मैदान मे एक हजार सवार उसके सामने आये । निसुर्रत्ति = निसुरतिखाँ । दरिया = दरियाखाँ । सुतन = लड़के । रहाँ = रास्ता ।

४८—नवट्ट = नव वयस्क, जवान । पुले लग्गा इन पथ्थे = मार्ग मे पुल पर ठहर गया । कह्यौ.. सारह = रयसल्ल के चरणों मे आकर कहा कि कुल मिलाकर दो हजार सेना साथ है । त्रंबाल = नगाड़े । सिलह = हथियार । नदि हुऔ उग्गंत पहु = नदी के पार होते ही सूर्योदय हुआ ।

गाथा

वजै पुठि त्रंवालं, हथ्थिय नेज सु उप्परं फहरं ।
जानि समुद्द उहाल, किय गजनेस हुकमय मीरं ॥४६॥

कवित्त

कह्यौ साह लोहान, कौन वज्जा वज्जाए ।
दौरि दूत तिन वेर, धनी पछिवानह धाए ॥
कूच कूच पर कूच, कौन पछिवान धनी कहि ।
तव जान्यौ रयसल्ल, सेन आजान वरयौ सह ॥
पतिसाह चलौं हौं पछि रहौं सहस डेढ असवार दिय ।
वंघेव फौज लोहान वर, दुहूँ फौज टामंक किय ॥५०॥

कवित्त

अरुन किरण परसंत, आइ पहुँच्यौ रयसल्लं ।
वज्जे वान विहंग, जानि जुट्टा दोंइ मल्लं ॥
संमाही आजान, तेग मनहु हवि दिट्टिय ।
जानि सिघर मझि वीज, कंध रैसल्लह वुट्टिय ॥
लोहान तनी वजे लहरि, कोउ हल्ले कोउ उत्तरै ।
परनाल रुधिर चल्लै प्रवल, एक घाव एकह मरै ॥५१॥

४९—भावार्थ—पृष्ठ भाग में वाजे वज रहे हैं, हाथियों पर झंडे फहरा रहे हैं, मानो समुद्र वढ रहा हो । गजनी-पति ने यवनों को तैयार हो जाने की आज्ञा दी ।

५०—तिन वेर = उस समय । धनी पछिवानह धाए = पश्चिम के देशों का स्वामी दौडता हुआ आ रहा है । वधेव फौज लोहान वर = वीर श्रेष्ठ लोहाना ने अपनी सेना को व्यूह वद्ध किया । दूहूँ फौज टामक किय = दोनों सेनाओं ने नगाडे वजवाये ।

५१—अरुन किरण परसत = सूर्य-किरणों के स्पर्श होते ही; सूर्य के निकलते ही । वज्जे वान विहग = पक्षियों के समान वाण उडने लगे । जुट्टा = भिड गये । समाही आजान = आजानवाहु लोहाना सामने आया । तेग मानहु हवि दिट्टिय = तलवार क्या थी, मानों अग्नि की लाट थी । वीज = विजली । कंध रैसल्लह वुट्टिय = रयसल्ल के कधे पर पड़ी । तनी = की । लोहान तनी

दूहा

गुर मुह चमकं दामिनी, लोह वज्यौ लोहान ।
इक उप्पर इक ढह नर, लुथ्थे लुथ्थ समान ॥५२॥
पर्यौ लुथ्थि रयसल्ल तहं दुट्टि पेन लोहान ।
सुवर भार गोरी निमय, गयौ सुगज्जन थान ॥५३॥

कवित्त

उत्तारिय सुरतान, सुनत गोरी पय लग्गा ।
न्योछावर करि पेर, बहुत मनसा भय भग्गा ॥
लष्ष एक असवार, मिल्यौ गोरी दल पष्षर ।
लष्ष भये दरवेस, आइ पइ लग्गे गष्षर ॥
उच्छाह भयौ गज्जन इला, गयौ सम्मुष्षि गोरी धनिय ।
दरबार भीर भीरत्त घन, मिलत आइ अप अप्पनिय ॥५४॥

डेरा दिय लोहान, करिय मनुहारि रोज दम ।
करिय सत्त आजान, तुरिय पचास अप्प सम ॥
इह दिन्नौ लोहान, बियौ भेज्यौ नृप राजं ।
लादे दोइ हजार, सत्त से तोला साजं ॥

वज्जे लहरि = लोहाना की तेज तलवार चली। कोउ हल्ले उत्तरै = कोई चिल्लाता था, कोई मर जाता था। परनाल = बड़ा नाला। एक घाव एकह मरे = एक ही मार मे एक मर जाता था।

५२—लोह वज्यौ = तलवार चली। इक . . . समान। एक के ऊपर एक गिरने से लोथों का ढेर लग गया था।

५३—पर्यौ लुथ्थि रयसल्ल तहं = वहाँ रयसल्ल की लोथ भी पड़ी हुई थी। सुवर = परम श्रेष्ठ। थान = स्थान।

५४—मनसा भय भग्गा = चित्त का भय दूर हो गया। लष्प भये... गष्पर = साधु वेषधारी एक लाख गक्खर जाति के मुसलमान गोरी के चरणों मे आकर गिरे। उछाह = उत्साह। इला = पृथ्वी, राज्य। मिलत आइ अप अप्पनिय = लोग आपस मे एक दूसरे से मिलने लगे।

इक इक्क तुरी हथ्थी सु इक्क, सामंतन दीनौ सवै ।
मुंह करिय किति अनेक विधि, सुवर सूर फेरिय जवै ॥

कवित्त

सीस दई लोहान, चल्यौ दिल्लीय पंथान ।
सग सहस असवार, अप्परिध वासव यान ॥
दिल्लीपति सामत, कुली छत्तीसह दष्पै ।
मिल्यो बाह आजान, बत्त सुरतान सु अष्षै ॥
इक इक्क तुरिय हथ्थी सु इक, सामतन पठए धरैं ।
सोव्रन्न रासि रजक पहर, मुक्कलियौ चित्रग पुरैं ॥५६॥

गढ़ चीतौड दुरग्ग, भट्ट पठयौ परिमान ।
लादे सित्त सुरङ्ग, सित्त लै तुला प्रमान ॥
दोइ हथ्थी मय मत्त, सत्त हैवर कुल राकिय ।
छत्र लियौ पतिसाह, जड़ित मनि मानिक साकिय ॥
लै चढ चल्यौ चित्तोरगढ़, जाइ समप्पै रावरह ।
बहु दान दियौ रावर समर, चल्यौ भट्ट अप्पन घरह ॥५७॥

—.०.—

५५—करिय सत्त = सात हाथी । आजान = आजानबाहु लोहाना को । बियौ भेज्यौ नृप राजं = दूसरी वस्तुएँ पृथ्वीराज के पास भेजीं । लादे..... साज = दो हजार सात सौ तोला सोना लदा कर भेज दिया । मुह करिय. .जबै = जब लोहाना को भेजा तब मुँह से उसकी बड़ी प्रशंसा की । सुबर सूर = श्रेष्ठ वीर ।

५६—अप्प रिध वासव यान = अपनी संपति के सहित इन्द्र के समान यात्रा की । दिल्लीपति...दष्पै = दिल्लीपति को छत्तीस कुलके सामतो सहित देखा । बत्त सुरतान सु अष्षै = सुलतान की सब बातें कह सुनाई । चित्रग पुरै = चित्तौड ।

५७—भट्ट = भाट, चन्दबरदाई । सित्त स्वरङ्ग = उज्ज्वल और रंग बिरंगे । सित्त लै तुला पुमान = ठीक तरह से तौल कर के । रावरह = रावळ समरसिह को ।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज बीकानेर राज्य के संस्थापक, इतिहास—प्रसिद्ध राव बीकाजी के वंश में से थे। इनका जन्म वि० सं० १६०६ के मार्गशीर्ष मे हुआ था। इनके पिता का नाम कल्याणमल और दादा का जैतसी था। सम्राट अकबर के प्रसिद्ध सेनापति महाराजा रायसिंह इनके बड़े भाई थे। पृथ्वीराज बड़े वीर, स्वदेशाभिमानी एवं स्पष्टभाषी पुरुष थे और सहृदय कवि होने के साथ साथ संस्कृत—साहित्य, दर्शनशास्त्र, ज्योतिष, छंदशास्त्र, संगीतशास्त्र आदि कई विषयों मे पारंगत थे। मुगल सम्राट अकबर के ये बड़े प्रीतिपात्र थे और इस लिये बादशाह के पास दिल्ली—आगरे में ही प्रायः रहा करते थे। ये भक्त भी उच्चकोटि के थे। भक्तवर नाभादास ने भी अपने 'भक्तमाल' में स्थान देकर इनके काव्य की बड़ी सराहना की है :—

> सवैया, गीत, श्लोक, वेलि, दोहा गुण नव रस।
> पिंगल काव्य प्रमाण विविध विध गायो हरि जस॥
> परि दुख विदुष सश्लाघ्य वचन रसना जु उचारै।
> अर्थ विचित्रन मोल सबे सागर उद्धारै॥
> रुक्मिणी लता वर्णन अनूप वागीश वदन कल्याण सुव।
> नरदेव उभय भाषा निपुण प्रथीराज कविराज हुव॥

पृथ्वीराज ने दो विवाह किये थे। इनकी पहली स्त्री लालादे परम लावण्यमयी एवं सहृदया महिला थी। पृथ्वीराज भी उस से बहुत प्रेम करते थे। पर देव—दुर्विपाक से उसकी अकाल मृत्यु हो गई जिससे इन्हे दूसरा विवाह करना पड़ा। इस बार इनका उद्वाहन जैसलमेर के रावल हरराज की कन्या चौपादे से हुआ। पृथ्वीराज का ख्याल था कि लालादे जैसी निपुण और गुणवती स्त्री उन्हे फिर न मिलेगी। और इसलिये वे अपना दूसरा विवाह करना भी नहीं चाहते थे। पर उनकी यह शंका निर्मूल सिद्ध हुई। रूप—गुण—रसज्ञता मे चौपादे दिवंगत लालादे से भी बढ़ कर निकली। उसके रूपालोक से पृथ्वीराज का गृहिणी—विहीन गृह पुनः दीप्तिमान हो उठा और लालादे

के अभाव को वे भूल गये। चाँपादे सुन्दर थी, चतुर थी, हंसमुख थी पर सर्वप्रधान गुण उसमें यह था कि वह काव्य—रचना में भी सिद्धहस्त थी। अपनी जीवन—नौका को खेने के लिये जैसा केवट पृथ्वीराज चाहते थे वैसा ही उन्हे मिला भी। दंपति परम सुखी एवं सतुष्ट थे। वे एक दूसरे की कविताएं सुनते, उन्हे सराहते, उनमें काट-छाँट करते, उनकी आलोचना—प्रत्यालोचना करते और सदोष हुई तो व्यंग—वृष्टि द्वारा एक दूसरे का मन भी बहला लेते थे। दोनों की आपस में खूब पटती थी।

एक दिन पृथ्वीराज सामने दर्पण रख कर अपने बालो में कंघी कर रहे थे कि उन्हे अपनी दाढी मे एक सफेद बाल दीख पड़ा। उसे उन्होने उखाड़ कर फेंक दिया पर पीठ पीछे खड़ी हुई चाँपादे यह लीला देख रही थी। वह चुपके से दो कदम पीछे हट गई और मुँह फेर कर हँसने लगी। उसके प्रतिबिंब को दर्पण में देखकर पृथ्वीराज ने पीछे देखा और फिर लज्जा विमिश्रित स्वर से बोले :—

पीथळ धौळा आविया, वहुळी लग्गी खोड़।
कामिण मत्त गयंद ज्यूँ, ऊभी मुक्ख मरोड ॥[1]

पृथ्वीराज की ग्लानि को मिटाने के अभिप्राय से चाँपादे ने भी कविता का उत्तर कविता मे इस प्रकार दिया :—

हळ तो धूना धोरियाँ, पन्थज गंग्घा पव।
नरां तुरां अर बनफळाँ, पक्काँ पक्काँ साव ॥[2]

कुछ तो उस समय की राजनैतिक झंझटों के कारण और कुछ अपने भाई महाराजा रायसिंह के लाभार्थ पृथ्वीराज को शाही दरबार में रहना पड़ता था पर अकबर की कूटनीति एव उसके राजकीय आदर्शों के प्रति उनकी सहानुभूति लेशमात्र भी न थी और इस लिये जब भी मौका मिलता

---

१ हे पृथ्वीराज ! तुम्हारे सफेद बाल आ गये हैं और बहुत सी खोट लग गई। (और देखो!) तुम्हारी प्रेमिका मुँह फेरकर मस्त हाथी के समान खड़ी (हँस रही) है।

२ हल चलाने के लिये अभ्यस्त बैल अच्छे होते हैं और मार्ग चलने के लिये पुराने (वयस्क लोगों के) पाँव। इसी तरह आदमी, घोड़े और बन के फल पकने ही पर रस देते हैं।

अकबर को भी खरी खरी सुनाने से यह नही चूकते थे। उदाहरणार्थ, एक दिन भरी सभा में अकबर ने जब यह डींग मारी कि अब प्रताप भी हमारी वश्यता स्वीकार करने को तैयार है तब ऐसी निर्भीकता से इन्होंने उसके कथन का खडन किया कि समस्त सभासद चकित, विभ्रान्त एव भीत हो उठे। पृथ्वीराज बोले—"जहापनाह! सागर मर्यादा, हिमालय गौरव और सूर्य तेज को भले ही छोड दे, परन्तु शरीर में बल, नसो में रक्त और हाथ में तलवार रहते तक प्रताप अपने प्रण को कदापि न छोडेंगे। आपकी अधीनता स्वीकार न करेंगे। मेरा दृढ विश्वास है कि मेवाड और भारत का ही क्या, समस्त ससार का राज्य भी यदि प्रताप के पावों तले रख दिया जाय तो वह उसे ठुकरा देंगे। स्वतन्त्रता के सामने प्रताप की दृष्टि मे राज्य—सम्मान, राज्याधिकार और राज्य वैभव का कोई मूल्य एव महत्त्व नहीं है।" अकबर पृथ्वीराज को अपने राज्य का प्रधान स्तम्भ समझता था, पर इस सिंहनाद ने उसके मन मे सन्देह उत्पन्न कर दिया और सोचने लगा कि प्रताप से मिलकर पृथ्वीराज कहीं मेरे एकाङ्गी अधिकार तथा साम्राज्य को जर्जरित करने का उद्योग न करे। वस्तुतः बात थी भी ऐसी ही। क्योंकि राजस्थान मे उस समय वीरों का अभाव न था, अभाव था हिन्दू सगठन का। और यदि प्रतापसिंह को कहीं पृथ्वीराज जैसा सच्चा, सुभट तथा स्वदेश—सेवी साथी मिल जाता तो कम से कम राजस्थान मे तो ये अकबर के पाव न जमने देते।

पृथ्वीराज के जीवन की एक और घटना राजस्थान मे बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं कि एक दिन अकबर ने इनसे कहा कि "तुम्हारे तो कोई पीर वश में मालूम होता है, बताओ तुम्हारी मृत्यु कब और कहाँ होगी।" "मथुरा के विश्रान्त घाट पर और उस समय एक सफेद कौआ प्रकट होगा"—पृथ्वीराज ने उत्तर दिया। बादशाह को विश्वास न हुआ और इस भविष्य वाणी को निर्मूल सिद्ध करने के लिये उसने पृथ्वीराज को किसी राजकार्य के बहाने से अटक पार भेज दिया।। इस घटना से कोई साढ़े पॉच महीने के बाद एक दिन एक भील चकवा-चकवी के एक जोडे को जगल से पकड़ कर बेचने के लिये दिल्ली के बाजार मे लाया। पक्षियों को देखने के लिये आये हुए मनुष्यो की बाजार मे भीड़ लग गई और उनमें से एक ने हंसी ही हसी मे उनसे पूछा—"तुम रात को कहॉ थे"? इस पर दोनो पक्षी सहसा बोल उठे—"इसी पिंजरे मे"। पक्षियो को मानव भाषा मे बोलते सुनकर लोगो को बड़ा अचभा हुआ और उनमे से किसी

ने इस बात की खबर अकबर को भी दी। बादशाह ने फौरन पिंजरा मगवाकर पक्षियों को देखा और कहा कि भील ने तो दुश्मनी से बेचने के लिये इन्हें पकड़ा था पर ऐसे शत्रु पर तो करोड़ो मित्र भी न्योछावर हैं। नवाब खानखाना उस समय वहाँ उपस्थित थे। उक्त भाव को लेकर उन्होंने यह आधा दोहा बनाया—

सजन वारू कोडधा, या दुर्जन की भेट।

बादशाह को यह उक्ति बहुत पसंद आई और खानखाना से कहा कि इसे पूरी करो। पर वे न कर सके। इसलिये पृथ्वीराज को बुलाने की आज्ञा हुई। बादशाह की आज्ञा पाकर पृथ्वीराज ठीक पद्रहवे दिन मथुरा पहुँचे। मृत्यु की घडी आ पहुँची थी। अतएव उन्होंने बादशाह के नाम एक पत्र लिखा और विश्रान्त घाट पर दान-पुण्य कर प्राण छोडे। सफ़ेद कौआ आया। बादशाह के कर्मचारी, जो उन्हे लेने गये थे, देखकर दग रह गये। उन्होंने आँखों देखी सारी घटना जाकर बादशाह से कह सुनाई और वह पत्र भी दिया जिसमें पूरा दोहा इस प्रकार लिखा हुआ था—

सजन वारू कोड़धा, या दुर्जन की भेट।
रजनी का मेळा किया, वेह के अच्छर मेट ॥[1]

यह घटना वि० स० १६५७ मे हुई थी।

पृथ्वीराज का साहित्यिक जीवन उनके राजनैतिक जीवन से कम महत्त्व-पूर्ण न था। डिंगल साहित्य को अनेकानेक कवियो ने समृद्धिशाली बनाया है, किन्तु डिंगल के शृगार रस के कवियो मे पृथ्वीराज का स्थान निश्चय ही उन सब से ऊंचा है। इनके रचे 'वेलि क्रिसन रुकमणी री', 'दशरथ रावउत' 'वसदेरावउत' और 'गगालहरी' नामक चार ग्रन्थ तथा बहुत से फुटकर गीत, दोहे, छप्पयादि मिले हैं। इनके सिवा इनके रचे दो ग्रन्थ और भी कहे जाते हैं—'प्रेमदीपिका' और 'श्रीकृष्ण रुक्मिणी चरित्र'। इन

---

१ इस दुर्जन के ऊपर करोड़ों सज्जन भी न्योछावर है, जिसने विधाता के लेख को मिटा कर (चकवा और चकवी का) रात मे मिलाप करा दिया। (ऐसा माना जाता है कि चकवा-चकवी दिन मे तो साथ साथ रहते है पर रात्रि मे अलग हो जाते हैं। लेकिन भील ने दोनों को पकड़ कर पिंजडे में बंद कर दिया जिससे उनका रात में भी संयोग हो गया)।

ग्रन्थों में 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। यह एक खण्ड काव्य है जो १०५ छन्दों में समाप्त हुआ है। इसमें श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिणी के विवाह की कथा का वर्णन है और भाव, भाषा, माधुर्य, ओज और विषय सभी दृष्टियों से अपने रंग ढंग का अप्रतिम है। हिन्दी में तो ऐसा प्रौढ़ और काव्यांगों से पूर्ण खण्ड काव्य अभी तक एक भी नहीं लिखा गया। इसकी भाषा बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं ललित है और कविता इतनी भावमयी, इतनी सरस और इतनी कलापूर्ण है कि पढ़ते ही मन मुग्ध हो जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि डिंगल वीर रस के लिये जितनी उपयुक्त है, उतनी शृंगार रस के लिये नहीं है। परन्तु यह उनकी भ्रान्ति है। पृथ्वीराज का यह ग्रन्थ इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि डिंगल में शृंगाररस की भी अत्युच्च, सुमधुर, प्रौढ़ और विशिष्ट रचना हो सकती है।

शृंगाररस के सिवा पृथ्वीराज ने वीर आदि अन्य रसों में भी बड़ी उत्तम कविता की है। इनके फुटकर गीत—दोहों में वीर रस की बड़ी भव्य व्यंजना हुई है और सच तो यह है कि इन्हीं के कारण इनका राजस्थान में इतना नाम भी है। हिन्दी के कीर्तिमान कवि भूषण के समान पृथ्वीराज भी राष्ट्रीय प्रगति के सच्चे प्रतिनिधि, उसके भक्त और समर्थक थे। इनकी कविता अपने युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती है और उसमें तत्कालीन राष्ट्रीय भावना का बड़ी सुन्दरता से स्पष्टीकरण हुआ है। पृथ्वीराज की वीररसात्मक कविताएं बहुत भावपूर्ण, बहुत हृदयस्पर्शी तथा बहुत प्रौढ़ हैं और ओज गुण तो उनमें इतना पाया जाता है कि उनके पढ़ने से कायर से कायर के हृदय में भी जोश उमड़ आता है। प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टाड ने पृथ्वीराज की कविता में दस हजार घोड़ों का बल बतलाया है, जो अक्षरशः ठीक है।

आगे हम पृथ्वीराज की वीररस की कविता के थोड़े से नमूने उद्धृत करते हैं :—

(१)

दोहे

धर बाँकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणां नरिंदा घेरियो, रहे गिरद्दां राण ॥१॥

१—धर = धरा, भूमि। पाधरा = अनुकूल। न मूकै = छोड़ता नहीं।

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप ।
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै सॉप ॥२॥
अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजळ ।
मेवाड़ो तिण मॉह, पोयण फूल प्रतापसी ॥३॥
पातळ पाघ-प्रमाण, सॉची सॉगाहर तणी ।
रही सदा लग राण, अकबर सू ऊभी अणी ॥४॥

माण = मान । घणा = बहुत, अनेक । घेरियो = घिरा हुआ । गिरंदाँ = पहाड़ों मे । बॉकी = विकट ।

भावार्थ—जिसकी भूमि अत्यन्त विकट है और दिन अनुकूल है; जो वीर अपने मान को नहीं छोडता, वह महाराणा (प्रताप) अनेक राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ों मे निवास करता है ।

२—एहड़ा = ऐसे । जेहडा = जैसा । ओझकै = चौंक पड़ता है । जण = जन्म दे ।

भावार्थ—हे माता ! ऐसे पुत्रों को जन्म दे जैसा राणा प्रताप है, जिसको अकबर सिरहाने का साँप समझ कर सोता हुआ चौंक पडता है ।

३—समद = समुद्र । सूरापण = शौर्य, वीरता । तिण मॉह = उसमे । पोयण = कमल ।

भावार्थ—अकबर अथाह समुद्र है जिसमे वीरतारूपी जल भरा हुआ है । परन्तु मेवाड का राणा प्रताप उसमे कमल के फूल के समान है । अर्थात् जिस तरह कमल पर जल का कोई असर नहीं पड़ता उसी तरह प्रताप पर भी अकबर की वीरता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।

४—पातळ = प्रतापसिंह । पाघ = पगडी, प्रमाण = निश्चय ही, वास्तव मे । तणी = की । अणी = आगे, सामने । ऊभी = अनम्र, सीधी खडी है ।

भावार्थ—महाराणा सागा के पोते प्रतापसिंह की पगड़ी ही वास्तव में सच्ची है जो अकबर के सामने सदैव अनम्र हो कर खडी रही अर्थात् प्रताप ने अकबर के आगे अपना मस्तक नहीं झुकाया ।

अहरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकड़ा ।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी ॥५॥
सह गावड़ियो साथ, एकण बाड़ै बाड़ियो ।
राण न मानी नाथ, तांडै सांड प्रतापसी ॥६॥
सहु गोधळिया पास, आळूधा अकबर तणी ।
राणो खिमै न रास, प्रघळो सांड प्रतापसी ॥७॥
वाही राण प्रतापसी, बरछी लचपच्चाह
जाणक नागण नीसरी, मुह भरियो बच्चाह ॥८॥
पातळ घड़ पतसाह री, एम विधूंसी आण ।
जाण नदी कर बदरा, पोथी वेद पुराण ॥९॥

५—तुहालो = तेरा । सह = सब । राजवी = राजा लोग ।

भावार्थ—हे अकबर ! तेरा तेज अद्भुत है जिसके सामने महाराणा प्रताप को छोड़ कर सब राजा लोग झुक गये ।

६—गावड़ियो = गायरूपी । एकण = एक । बाड़ियो = डाल दिया; इकट्ठा कर लिया । तांडै = डाँढता है, गरजना करता है । नाथ = नाक का बंधन ।

भावार्थ—हे अकबर ! तूने गायरूपी सब राजाओं को एक बाडे मे इकट्ठा कर लिया; पर सांडरूपी राणा प्रताप तेरी नाथ को न मान कर गरज रहा है ।

७—गोधळिया = बैलरूपी । पास = पाश, फाँस । आळूधा = आ गये = बँध गये । खिमै न = सहन नहीं करता । रास = रस्सी । प्रघळो = प्रबल, जबरदस्त ।

भावार्थ—अन्य सब छोटे बैलरूपी राजा अकबर के पाश में बँध गये । पर प्रतापसिंहरूपी बलवान सांड उसकी रस्सी को सहन नहीं करता ।

८—लचपच्चाह = लचकती हुई । जाणक = मानो । नागण = सर्पिणी । नीसरी = निकली । वाही = चलाई ।

भावार्थ—महाराणा प्रताप ने लचकती हुई बरछी चलाई, वह (शत्रु को भेद कर) इस तरह बाहर आई मानो कोई सर्पिणी अपने बच्चों को मुँह मे लेकर निकली हो ।

९—घड़ = सेना । एम = इस तरह विधूंसी = नष्ट कर दी । जाण = जैसे, मानो ।

चोथो चीतोड़ाह, वॉटो बाजती तणो ।
माथे मेवाड़ाह, थारे राण प्रतापसी ॥१०॥
पातळ, जो पतसाह,—बोलै मुख हूता बयण ।
मिहर पछम दिस माह, ऊगै कासप राव उत ॥११॥
पटकूं मूछा पाण, कै पटकूं निज तन करद ।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥१२॥

भावार्थ—महाराणा प्रताप ने बादशाह अकबर की फ़ौज को इस तरह नष्ट कर दिया जिस तरह बदर के हाथ वेद-पुराण की पुस्तक आने पर वह उसे फाड़ फेकता है ।

१०—चोथो = चतुर्थ । वाँटो = भाग । बाजंती तणो = बजती हुई घड़ियाल का । चीतोडाह = चितौड़ के स्वामी । माथे = मस्तक पर । थारे = तेरे । चोथो वॉटो बाजंती तणो = बजती हुई घड़ी का चौथा हिस्सा अर्थात् पाव घड़ी । पाघडी । पगड़ी ।

भावार्थ—हे चित्तौड़ के स्वामी प्रताप ! बजती हुई घड़ी का चतुर्थभाग (पाव घड़ी अर्थात् पाघड़ी = पगड़ी) पगड़ी तेरे ही सिर पर है । (कवि का अभिप्राय यह है कि प्रताप को छोड़ दूसरे सब राजाओं ने अपनी पगडी अकबर के पाँवों मे डाल दी है अर्थात् सब उसके पाँवो मे झुकने लग गये हैं) ।

११—हूंता = से । बयण = बचन, शब्द ।

भावार्थ—प्रतापसिंह यदि अपने मुँह से अकबर को बादशाह कहें, तो कश्यप के पुत्र सूर्य पश्चिम दिशा मे उगने लग जाये । अर्थात् जिस तरह सूर्य का पश्चिम मे उगना असभव है उसी तरह प्रताप के मुँह से भी 'बादशाह' शब्द का निकलना असंभव है ।

१२—करद = तलवार । दीवाण—मेवाड़ के महाराणा एकलिंग जी के दीवान कहलाते है । मेवाड़-राज्य एकलिंगजी का है, महाराणा उनके दीवान हैं ।

भावार्थ—हे एकलिंग के दीवान महाराणा ! मैं अपनी मूँछों पर ताव दूँ या अपने शरीर को तलवार से काट दूँ, इन दो मे से एक बात लिख दीजिये ।

वाही राण प्रतापसी, बगतर में बरछीह ।
जाणक झींगर जाळ में, मुह काढ्यो मच्छीह ॥१३॥

चम्पो चीतोड़ाह, पोरस तणो प्रतापसी ।
सोरभ अकबर साह, अळियळ आभड़ियो नहीं ॥१४॥

(२)

गीत

नर जेथ निमाणा निलजी नारी,
अकबर गाहक वट अवट ।
चोहटै तिण जायर चीतोड़ो,
बेचै किम रजपूतवट ॥१॥

१३—वाही = चलाई । वगतर = (फा० बक्तर) लोहे के जाल का बना हुआ कवच ।

भावार्थ—महाराणा प्रताप ने बरछी चलाई; वह कवच को फोड कर इस तरह बाहर निकली जिस तरह छोटी मच्छी जाल में से मुंह निकालती है ।

१४—पोरस = पौरुष, पराक्रम । तणों = का । सोरभ = पराग, सुगंध । अळियळ = भ्रमर । आभडियो नहीं = स्पर्श नहीं किया, पास नहीं आया ।

भावार्थ—चित्तौड़ के स्वामी प्रताप का पराक्रम चंपे का वृक्ष है जिसके सौरभ पर अकबररूपी भ्रमर नहीं आया । प्रसिद्ध है कि भ्रमर सब फूलों पर मँडराता और उनका रस लेता है पर चंपे के फूल के पास ही नहीं फटकता । किसी कवि ने कहा भी है :—

चंपा तुव में तीन गुण, रूप, रंग अरु वास ।
अवगुण तुव में कौन है, भौंर न आवै पास ।

१—जेथ = जहाँ । निमाणा = मानहीन । निलजी = निर्लज्ज । वाट = (हि० वाट) मार्ग । अवट = अभेद्य, अगम, बाँका-टेढा, घुमावदार । चोहटै = बाजार । तिण = उस । जायर = जाकर । चीतोड़ो = चित्तौड़ का स्वामी । किम = कैसे । रजपूतवट = रजपूती, क्षात्र धर्म ।

रोजायता तणैं नवरोजै,
जेथ मुसाणा जणो जण ।
हीदू नाथ दिल्लीचे हाटे,
पतो न खरचै खत्रीपण ॥२॥
परपञ्च लाज दीठ नह व्यापण,
खोटो लाभ अलाभ खरो ।
रज बेचवा न आवै राणो,
हाटे मीर हमीरहरो ॥३॥
पेखे आप तणा पुरसोतम,
रह अणियाल तणैं बळ राण ।
खत्र वेचिया अनेक खत्रिया,
खत्रवट थिर राखी खुम्माण ॥४॥ राना प्रताप

भावार्थ—जहाँ पर पुरुषों के मान और स्त्रियों के सतीत्व का अपहरण किया जाता है, जहाँ के मार्ग टेढे-मेढे है और जहाँ अकबर जैसा खरीदार है उस बाजार मे जाकर चित्तौड़ का स्वामी (प्रताप) रजपूती को कैसे बेचेगा ?

२—रोजायतां तणैं = मुसलमानों के । नवरोजै = नौरोज के उत्सव मे । मुसाणा जणो जण = प्रत्येक व्यक्ति लुट गया । दिलीचे हाटे = दिल्ली के बाजार मे । पतो = प्रतापसिंह । न खरचै = खर्च नही करता । खत्रीपण = क्षत्रियत्व, रजपूती ।

भावार्थ—मुसलमानों के नौरोज मे प्रत्येक व्यक्ति लुट गया । परन्तु दिल्ली के उस बाजार मे हिन्दू-पति महाराणा प्रतापसिंह अपने क्षत्रियपन को खर्च नही करता (नही बेचता) ।

३—परपंच = प्रपंच । रज = रजपूती । अलाभ = हानि, घाटा ।

भावार्थ— हमीर का वंशज (राणा प्रताप) प्रपची अकबर की लज्जाजनक दृष्टि अपने ऊपर नही पडने देता और पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा तथा अलाभ (हानि) को अच्छा समझ कर बादशाही दुकानों पर रजपूती बेचने के लिये नही आता ।

४—आप तणा = अपने । पुरसोतम = पुरखाओं के उत्तम (कार्य) ।

जासी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार।
है राख्यो खत्री ध्रम राणै,
सारा ले बरता संसार ॥५॥

(२)

गीत

ऊगा दन समै करै आपाडा,
चौरंग भुवण हसत अणचूक।
रोदा तणा रगत सूं राणा,
रंगियो रहै तुहाळो रूक ॥१॥
मोरळहरा महाजुध मचतै,
नचता नर नचीट वहै।

आणियाल तणै=भाले के। खत्रवट=क्षत्रिय धर्म। खत्र=क्षत्रिय। थिर=स्थिर।

भावार्थ—अपने पूर्वजों के उत्तम कर्त्तव्य को देखते हुए आप (महाराणा प्रताप) ने भाले के बल से क्षत्रिय धर्म को अचल रखा जब कि अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को बेच डाला।

५—भावार्थ—अकबररूपी ठग एक दिन इस संसार से चला जायगा। और उसका यह बाजार भी उठ जायगा। परंतु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रियों के धर्म में रह कर उस धर्म को केवल प्रतापसिंह ने ही निभाया।

१—ऊगा दन=दिन उगते ही। समैं=समय। आपाडा=युद्ध। चौरंग भुवण=युद्ध-भूमि मे। हसत=(सं० हस्त) हाथ। अणचूक=अचूक। रोदा तणा=मुसलमानों के। रगत=रक्त। तुहाळो=तेरा। रूक=खड्ग।

भावार्थ—हे राणा (प्रताप)! तेरे न चूकने वाले हाथ दिन उगते समय ही रण-भूमि मे युद्ध करने लगते हैं और तेरा खड्ग मुसलमानों के रक्त से रंगा ही रहता है।

पातळ तूफ तणो पडियाळग,
रुधर चरच्चियो सदा रहै ॥२॥
पित कारणँ करै नित षळवट,
षेटै कटक तणा षुरसांण ।
प्रमणा सोंण अहोनस पातळ,
षग सावरत रहै षूमाण ॥३॥
ऊगा सूर समौ ऊदावत,
वढै वँसू छळवोळ विरोळ ।
चळअळ अरी तणँ चीतोडा,
चंदप्रहास रहै नत चोळ ॥४॥

२—मोकळहरा = मोकल के वशज (प्रताप)। नत्रीठ वहै = बड़े वेग से चलता है । पडियाळग = खड्ग । चरचियो = लेप किया हुआ ।

भावार्थ—हे मोकल के वंशज ! महायुद्ध मचते समय तेरा खड्ग भागते हुए शत्रुओं के सिरों पर बड़े वेग से चलता है। हे प्रताप ! तेरा खड्ग सदा रुधिर से चर्चित रहता है ।

३—षित = पृथ्वी । पळवट = दुष्टता का, दुष्टों का । खेटै = संहार करता है। पुरसाण = यवन । प्रसणां = शत्रु । सोण = रक्त । पातळ = प्रतापसिंह । सावरत = लाल । अहोनस = रात-दिन ।

भावार्थ—हे खुमाण के वंशज प्रातप ! तू पृथ्वी के लिये दुष्टों का संहार करता है और यवनों की सेनाओं को नष्ट करता है। तेरा खड्ग रात-दिन यवनों के खून से लाल रहता है ।

४—ऊदावत = उदयसिंह का पुत्र । वसू = पृथ्वी । नत = सदैव । चोळ = लाल ।

भावार्थ—हे उदयसिंह के पुत्र ! सूर्योदय के समय से ही तू पृथ्वी के लिये युद्ध करना प्रारंभ करता है। हे चित्तौड़ के स्वामी ! तेरा चन्द्रहास (खड्ग) शत्रुओं के रक्त से सदा लालवर्ण रहता है ।

दुरसाजी

दुरसाजी ने मारवाड़ राज्य के धूंदला गांव में एक गरीब चारण के घर में वि० सं० १५६२ में जन्म लिया था। ये आढ़ा गोत्र के चारण थे। इनके पिता का नाम मेहाजी और पितामह का अमराजी था। जब ये ६ वर्ष के थे तब इनके पिता का देहान्त हो गया जिससे बहुत थोड़ी अवस्था में इन्हें एक किसान के यहां नौकरी करनी पड़ी। कहते हैं, एक दिन जब ये अपने मालिक के खेत पर काम कर रहे थे तब बगड़ी के ठाकुर प्रतापसिंह जी कहीं से इधर आ निकले और उनसे इनकी बातचीत हुई। इनकी मुखाकृति और वार्तालाप के ढंग से ठाकुर साहब बहुत प्रभावित हुए और होनहार समझ कर इन्हें अपने घर ले आये। अपने घर पर ठाकुर साहब ने इनके लिये पढ़ने-लिखने का अच्छा प्रबंध कर दिया और कुछ कालोपरान्त जब ये पढ़-लिख कर होशियार हो गये तब इन्हें अपने सेनापति और प्रधान सलाहकार के पद पर नियुक्त कर लिया।

इसी समय दुरसाजी की मुगल सम्राट अकबर से भेंट हुई। एक बार बादशाह सोजत के रास्ते से होकर आगरे से अहमदाबाद की तरफ जा रहा था। बीच में सोजत बादशाह के ठहरने का एक प्रधान विश्राम-स्थल था और वहां से लगा कर गूंदोच के डेरे तक उसके राह प्रबंध की जिम्मेदारी बगड़ी के ठाकुर साहब के ऊपर थी। अतएव ठाकुर साहब ने दुरसाजी को इस काम के लिये चुना। इन्होंने भी बड़ी चतुराई के साथ अपने सारे कार्य को सभाला जिससे बादशाह बहुत खुश हुआ और लाख पसाव तथा सेवा की प्रशसा का प्रमाण-पत्र देकर उसने इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। इस समय से दुरसाजी के जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ होता है। धीरे धीरे इनका शाही दरबार में प्रवेश हो गया और अकबर जैसे प्रतापी सम्राट का इन पर हाथ देखकर दूसरे राजा महाराजा भी इनका बहुत आदर सत्कार करने लगे।

अकबर जितना दुरसाजी की काव्य-प्रतिभा पर मुग्ध था उतना ही इनकी वीरता पर भी लट्टू था। अतएव जब भी जरूरत होती, वह इन्हे भी शाही सेना के साथ लड़ने के लिये भेजा करता था। वि० सं० १६४० में जिस समय सम्राट ने अपनी एक सेना सीसोदिया जगमाल की सहायता के

लिये सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध भेजी उस समय दुरसाजी भी उसके साथ थे। आबू के पास मुगल-सैन्य और राव सुरताण की सेना में भारी युद्ध और भयकर कटाकटी हुई जिसमें अकबर की तरफ से रायसिंह, कोलीसिंह, जगमाल आदि कई वीर मारे गये और दुरसाजी के भी बहुत से घाव लगे। सध्या समय जब राव सुरताण और उसके कुछ सरदार रणक्षेत्र का निरीक्षण कर रहे थे तब उन्होंने घायल दुरसाजी को वहाँ पर पडा देखा और एक साधारण सिपाही समझ कर इनको भी दूध पिलाना (मारना) चाहा। परन्तु म्यान से तलवार निकालकर इनका प्रणान्त करने के लिये ज्यों ही एक आदमी इनकी तरफ बढा त्योंही ये सहसा बोल उठे—"मुझे मत मारो। मैं राजपूत नहीं, चारण हूँ"। इस पर इनसे कहा गया कि यदि तुम चारण हो तो इस समरा देवडा की प्रशसा मे, जो हाल ही मे काल कवलित हुआ है, कोई कविता कहो। यह सुनकर दुरसाजी ने उसी वक्त यह दोहा कह सुनायाः—

धर रावा जस डूगरा, ब्रद पोता शत्र हाण।
समरे मरण सुधारियो, चहुँ थोका चहुँआण ॥[1]

दुरसाजी की कविता सुनकर राव सुरताण बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसी वक्त उन्हें वहाँ से उठवाने का हुक्म दिया और घर ले जाकर उनके घावों में पट्टियाँ बधवाई। स्वस्थ हो जाने पर दुरसाजी राव सुरताण के पास सिरोही मे अधिक दिनों तक न रहे। वहाँ से बादशाह की सेवा में वापस दिल्ली चले गये।

दुरसाजी के जीवन सबधी कई ऐसी कथाए राजस्थान मे प्रचलित हैं जिनसे इनके ऊचे व्यक्तित्व, अगाध देशप्रेम तथा स्वतत्र प्रकृति का पता लगता है। कहा जाता है कि जिस समय अकबर के दरबार में महाराणा प्रताप की मृत्यु का समाचार पहुँचा उस समय दुरसाजी भी वहीं उपस्थित थे। अकबर प्रताप का शत्रु अवश्य था पर साथ ही वह मनुष्य की सच्ची परीक्षा करना भी जानता था। प्रताप जैसे वीर के निधन से उसे भी भारी दुख हुआ और एक लबी साँस खींचकर डबडबाई आँखों से वह पृथ्वी

---

१ अर्थ—चौहान समरा ने चारों तरह से अपनी मृत्यु को सार्थक किया अर्थात राव (सुरताण) के भूमि की रक्षा की, पहाडों की प्रशंसा करवाई, अपने वश वालों के लिये सम्मान छोड़ गया और शत्रुओं को हानि पहुँचाई।

की ओर देखने लगा। दुरसाजी बादशाह की विचार-वेदना को ताड़ गये और उसकी मुखाकृति से उसके दिल के भाव समझ कर उन्होने यह छप्पय कहा :—

> अस लेगो अणदाग, पाघ लेगो अणनामी।
> गो आड़ा गवड़ाय, जिको बहतो धुर वामी॥
> नवरोजे नह गयो, न गो आतसा नवल्ली।
> न गो झरोखा हेठ, जेथ दुनियाण दहल्ली॥
> गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी।
> नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत साह प्रतापसी॥[1]

इसे सुनकर दरवारियो ने अनुमान किया कि बादशाह दुरसाजी पर अवश्य क्रुद्ध होगा। परन्तु उसने तो उल्टा उन्हे इनाम दिया और कहा कि इसी ने मेरे भाव को ठीक ठीक समझा है।

दुरसाजी ने दो विवाह किये थे जिनसे इनके चार पुत्र हुए—भारमल जी, जगमलजी, सादूलजी और किसनाजी। वृद्धावस्था मे अपने सब से बडे पुत्र भारमल जी के साथ इनकी कुछ खटपट हो गई थी इसलिये ये अपने सब से छोटे पुत्र किसनाजी के साथ पाचेटिया (मारवाड़) मे रहते थे। यहाँ पर वि० स० १७१२ मे १२७ वर्ष की अवस्था मे इनका स्वर्गवास हुआ। पाचेटिया मे जिस स्थान पर इनका अग्नि-सस्कार हुआ, वहाँ पर एक मदिर अभी तक बना हुआ है। आबू के अचलेश्वर महादेव के मन्दिर मे शिवजी की प्रतिमा के सामने इनकी भी सर्वधात की एक मूर्ति बनी हुई है, जो इनकी देवोपम प्रतिष्ठा का परिचय देती है।

दुरसाजी बडे भाग्यशाली कवि थे। कविता के नाम से जितना धन, जितना यश और जितना सम्मान इनको मिला, उतना राजस्थान के किसी भी दूसरे कवि को आज तक नहीं मिला। इस दृष्टि से इनका महत्व

---

१ आशय—हे गुहिलोत राणा प्रतापसिह! तेरी मृत्यु पर बादशाह ने दाँतों के बीच जीभ दबाई और निश्वास के साथ आँसू टपकाये; क्योंकि तूने अपने घोड़े को दाग नहो लगने दिया, अपनी पगड़ी को किसी दूसरे के सामने नहीं झुकाया, तू अपने यश के गीत गवा गया, तू अपने राज्य के धुरे को बाँये कधे से चलाता रहा, नौरोज मे नहीं गया, न शाही डेरों मे गया, कभी शाही झरोखे के नीचे खड़ा न रहा और तेरा रोब दुनियाँ पर ग़ालिब था; अतएव सब तरह से विजयी रहा।

हिन्दी के महाकवि भूषण से भी बहुत बढकर है। मेवाड़ के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कवि राजा श्यामलदास ने अपने प्रख्यात ग्रथ वीरविनोद में लिखा है कि सम्राट अकबर ने इनको छह करोड रुपया दिया था। इसके सिवा बीकानेर के महाराजा रायसिंह, जयपुर के महाराजा मानसिंह और सिरोही के राव सुरताण ने इन्हे एक एक क्रोड पसाव दिया था और छोटे मोटे गॉव और लाख पसाव तो इन्हे कई राजाओ की तरफ से मिले थे। इतना ही नहीं अकबर के दरबार मे इनको बैठक मिली हुई थी, जिसके लिये उस समय के बड़े बड़े राजा-महाराजा लालायित रहते और तरसते थे।

दुरसाजी बडे प्रतिभावान कवि थे और बहुत लम्बी आयु का उपभोग कर स्वर्गवासी हुए थे। अतएव सभावना तो यही है कि इन्होंने प्रचुर परिमाण मे लिखा होगा परन्तु अभी तक इनकी बहुत कम कविताएँ उपलब्ध हुई हैं। इनके रचे 'विरुद छहत्तरी' तथा 'कुमार श्री अजाजी नी सुचर मोरी नी गजगत' नामक दो छोटे छोटे ग्रथ और थोड़े से फुटकर गीत छप्पय आदि प्राप्त हुए हैं और इन्ही पर इनकी उत्तुग ख्याति अवलंबित है। इनकी कविताओं का राजस्थान के काव्य-प्रेमियो में बड़ा आदर है और चारणो में तो शायद ही कोई ऐसा हतभाग्य पुरुष मिलेगा जिसे इनकी दो-चार कविताए मुखाग्र न हो। दुरसाजी हिन्दू-धर्म हिन्दू-जाति और हिन्दू-सस्कृति के अनन्य उपासक थे। अपनी कविता मे इन्होंने तत्कालीन हिन्दू-समाज की विपन्नावस्था और अकबर की कूटनीति का बड़ा ही सजीव, वीर-दर्प-पूर्ण और चुभता हुआ वर्णन किया है। कहने को तो इनकी 'विरुद छहत्तरी' मे महाराणा प्रताप के यश का वर्णन है, परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से उसके अतराल मे हमे मुगल शासन के विरुद्ध होने वाली क्रान्ति की मूलभूत उस गुप्त और सूक्ष्म चिनगारी का आभास मिलता है जो शनैः शनैः बढती हुई औरगजेब के समय में अति विकराल अग्नि-ज्वाला का रूप धारण कर लेती है और अत में विशाल मुगल साम्राज्य को भस्मीभूत कर उसे धूल में मिला देती है।

दुरसाजी की कविता के कुछ नमूने हम आगे प्रस्तुत करते हैं :—

दोहे

अकबर गरब न ऑण, हींदू सह चाकर हुवा।
दीठो कोई दीवाण, करतो लटका कटहड़े ॥१॥

१—गरब न ऑण = गर्व मत कर। सह = सब। दीवाण = महाराणा। दीठो = देखा है।

अकबर कीना आद, हींदू नृप हाजर हुवा ।
मेदपाट मरजाद पग लागो न प्रतापसी ॥२॥
कदे न नामै कंध, अकबर ढिग आवै न ओ ।
सूरज वंश संबंध, पाळै राण प्रतापसी ॥३॥
अकबर पथर अनेक, कै भूपत भेळा किया ।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥४॥
सांगो धरम सहाय, बाबर सूं भिड़ियो बिहस ।
अकबर कदमा आय, पड़ै न राण प्रतापसी ॥५॥

भावार्थ—हे अकबर ! सब हिन्दू तेरे चाकर हो गये, इस बात का अभिमान मत कर । क्या कभी किसी ने महाराणा (प्रताप) को शाही कटहरे के पास झुक झुक कर सलाम करते देखा है ?

२—कीना आद = याद किया । मेदपाट = मेवाड़ ।

भावार्थ—अकबर ने याद किया तो सब हिन्दू राजा हाजिर हो गये । लेकिन मेवाड़ की मर्यादा को रखने वाला राणा प्रताप उसके पांवो मे नही पडा ।

३—कदे = कभी । ओ = यह ।

भावार्थ—यह राणा न तो कभी अकबर के पास आता है और न मस्तक ही झुकाता है । प्रतापसिंह सूर्यवंश के संबंध का पालन करता है । (सूर्य किसी के भी सामने नहीं झुकता । प्रताप सूर्य्य का वंशज है, इसलिये अपनी वंश मर्य्यादा को रखने के लिये वह भी किसी के सामने नत मस्तक नही होता ।)

४—भेळा किया = इकट्ठा किया । हेक = एक ।

भावार्थ—अकबर ने राजारूपी अनेक पत्थर इकट्ठे किये, किन्तु पारसरूपी एक राणा प्रताप उसके हाथ नही आया ।

५—भिड़ियो = भिड़ गया, लड़ा । बिहस = खूब, जोरों से । कदमा = कदमों मे ।

भावार्थ—पहले महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) धर्म की सहायता के लिये बाबर से खूब लड़ा था और अब राणा प्रताप अकबर के पैरों मे नही पड़ता ।

सुष हित, स्याळ समाज, हींदू अकबर वस हुवा।
रोसीलो मृगराज, पजै न राण प्रतापसी ॥६॥
है अकबर घर हाण, डाण ग्रहे नीची दिसट।
तजै न ऊची ताण, पोरस राण प्रतापसी ॥७॥
जाणै अकबर जोर, तो पिण ताणै तोर तिड़।
आ बलाय है और, पिसणा पोर प्रतापसी ॥८॥
अकबर हिये उचाट, रात दिवस लागी रहै।
रजवट वट समराट, पाटप राण प्रतापसी ॥९॥

६—स्याळ = गीदड़, शृगाल। रोसीलो = क्रोधी। पजै न = अधीन नहीं होता, परास्त नही होता।

भावार्थ—सुख-भोग के लिये अन्य हिन्दू राजा गीदड़ो की तरह अकबर के वश मे हो गये, पर क्रोधी सिंह के समान राणा प्रताप उसकी अधीनता स्वीकार नही करता।

७—हाण = हानि। डाण = खिराज, जुरमाना, अर्थ-दंड। दिसट = (सं० दृष्टि) निगाह, नजर। ऊँची ताण = उच्चाशय। पोरस = पुरुषार्थ, पौरुष।

भावार्थ—अकबर के घर मे हानि है जिससे खिराज लेते हुए भी उसकी दृष्टि नीची ही रहती है। क्योंकि उच्चाशय राणा प्रताप अपने पुरुपार्थ को नहीं छोडता।

८—जाणै = जानता है। तो पिण = तो भी। ताणै = खींचता है। तिड़ = पक्ष। पिसणा = शत्रुओं को। पिसण = शत्रु। पोर = (फा० ख्वार) खाने वाली।

भावार्थ—अकबर अपने बल को जानता है तो भी जोश से अपने पक्ष को खींचता है। पर दुश्मन को खा जानेवाली यह आफत, प्रतापसिंह दूसरी ही (चीज) है।

९—उचाट = उच्चाटन, खटका। रजवट = रजपूती। वट = जोर, मार्ग। समराट = सम्राट्। पाटप—पाटवी, सब-से-बड़ा।

भावार्थ—अकबर के मन मे रात-दिन यह खटका बना रहता है कि रजपूती के जोर अथवा मार्ग को रखनेवाले सम्राटों मे प्रताप ही सब से बड़ा है।

अकबर समद अथाह, तिहँ डूबा हींदू तुरक।
मेवाड़ो तिण माह, पोयण फूल प्रतापसी ॥१०॥
अकबरिये इकबार, दागळ की सारी दुनी।
अणदागळ असवार, रहियो राण प्रतापसी ॥११॥
अकबर घोर अंधार, ऊँघाणा हींदू अवर।
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥१२॥
अकबर कनै अनेक, नम नम नीसरिया नृपत।
अनमी रहियो एक, पहुवी राण प्रतापसी ॥१३॥

१०—पोयण = कमल।

भावार्थ—अकबर अथाह समुद्र के समान है जिसमे हिन्दू और मुसलमान सब डूब गये। परन्तु मेवाड का महाराणा प्रतापसिंह कमल के फूल के समान उसके ऊपर ही (तैर रहा) है।

११—दुनी = दुनिया । दागल = दाग से युक्त। अपने अधीनस्थ तमाम राजाओं, अमीरों आदि के घोड़ो की पीठ पर दाग लगाने की प्रथा अकबर ने इसलिये प्रचलित कर रखी थी कि जिससे घोड़े को देखते ही यह ज्ञात हो जाय कि अमुक घोडा बादशाही सेवक का है और अमुक नहीं है।

भावार्थ—अकबर ने एक बार मे ही सारी दुनिया के दाग लगा दिया पर एक राणा प्रताप ही बिना दागवाले घोड़े पर सवार होता है।

१२—ऊँघण = ऊँघने लग गये। अवर = अन्य, दूसरे पोहरै = पहरे पर।

भावार्थ—अकबर घोर अंधकार के समान है जिसमे अन्य सब हिन्दू ऊँघने लग गये है। लेकिन जगत का दाता प्रतापसिंह पहरे पर जग रहा है।

१३—कनै = पास । नीसरिया = निकल गये । अनमी = अनम्र। पहुवी = पृथ्वी।

भावार्थ—अकबर के पास सब राजा मस्तक झुका कर निकल गये। पृथ्वी पर एक महाराणा प्रताप ही अनम्र रहा गया है।

थिर, नृप हिन्दुसथान, लातरगा मग लोभ लग ।
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ॥१४॥
सेला अणी सनान, धारा तीरथ में धसे ।
देण धरम रणदान, पुरट सरीर प्रतापसी ॥१५॥
ढिग अकब्बर दळ ढाण, अग अग झगड़ै आथड़ै ।
मग मग पाड़ै माण, पग पग राण प्रतापसी ॥१६॥
चीत मरण रण चाय, अकब्बर आधीनी विना ।
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवै न प्रतापसी ॥१७॥

१४—लातरगा = थक गये, पथ-भ्रष्ट हो गये । मग लोभ लग = लोभ के मार्ग मे लग कर, लोभ के वशीभूत होकर । थिर = स्थिर, अडिग ।

भावार्थ—कभी भी न डिगनेवाले हिन्दोस्तान के राजा लोग लोभ के मार्ग मे पड़ कर थक गये । परन्तु राणा प्रताप पृथ्वी को माता मान कर पूजता है ।

१५—सेला = भालों की । अणी = नोक । सनान = स्नान । धारा तीरथ = तलवाररूपी तीर्थ, तलवार के घाट । धँसे = प्रवेश कर के । पुरट = सोना ।

भावार्थ—हे राणा प्रताप ! भालों की नोकों मे स्नान करते हुए और तलवार की धारारूपी तीर्थ मे प्रवेश कर के स्वधर्म के लिये स्वर्ण-रूपी शरीर का दान देनेवाला एक तू ही है ।

१६—अग = पर्वत । आथड़ै = युद्ध करता है । पाड़ै माण = मान-भजन कर देता है ।

भावार्थ—अकबर के पास का सैन्य-समूह पर्वत-पर्वत पर लडता-झगडता है । परन्तु महाराणा प्रताप प्रत्येक मार्ग मे पग-पग पर उसके मान का भजन करता है ।

१७—चाय = इच्छा ।

भावार्थ—महाराणा प्रताप की एक मात्र इच्छा यही है कि युद्ध मे मर जाना पर अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं करना । अत: पराधीनता के दुख को सहकर प्रताप जीवित रहना नहीं चाहता ।

गोहिल कुळ धन गाढ, लेवण अकबर लालच ।
कौड़ी दे नह काढ, पणधर राण प्रतापसी ॥१८॥
अकबर दळ अप्रमाण, उदनयर घेरे अनय ।
पागां बळ पूमाण, गाहा दळण प्रतापसी ॥१९॥
अकबर तड़फै आप, फते करण चारूं तरफ ।
पण राणो परताप, हाथ न चढ़ै हमीरहर ॥२०॥
अकबर किला अनेक, फते किया निज फौज सूं ।
अकल चले नह एक, पाधर लड़ै प्रतापसी ॥२१॥
कळपै अकबर काय; गुण पूंगीधर गोड़िया ।
मिणधर छावड़ माय, पड़ै न राण प्रतापसी ॥२२॥

१८—धन गाढ़ = गाढी कमाई, भारी धन । काढ = निकाल कर । पणधर = प्रण रखने वाला । लेवण = लेने के लिये ।

भावार्थ—गुहिलोत वंश की गाढी कमाई को ले लेने के लिये अकबर बहुत लालच कर रहा है । परन्तु दृढ प्रतिज्ञ राणा प्रताप एक कौडी भी निकाल कर उसे नहीं देता ।

१९—उदैनयर = उदयपुर, मेवाड़ की वर्तमान राजधानी । अनय = अन्याय पागां बल = खड्ग के बल से । पूमाण = खुमाण का वंशधर । दळण = दलनेवाला, पीसनेवाला ।

भावार्थ—अकबर की असंख्य सेना ने उदयपुर को अपनी अनीति से घेर लिया है । लेकिन खुमाण का वशज प्रतापसिंह अपने खड्ग के बल से शाही सेना को पीस डालता है ।

२०—पण = लेकिन । हमीरहर = हमीरसिंह का वंशज ।

भावार्थ—चारो तरफ फतह प्राप्त करने के लिये अकबर स्वयं तड़फ रहा है । लेकिन हमीरसिंह का वंशज राणा प्रताप उसके हाथ नहीं चढता (आता) ।

२१—पाधर = सम भूमि, सीधा । नह = नहीं ।

भावार्थ—अकबर ने अपनी फौज के बल से अनेक किले फतह कर लिये । परन्तु प्रतापसिंह सम भूमि पर लड़ता है, इसलिये उसकी एक भी नहीं चलती ।

२२—कळपै = कलपता है, खीजता है । काय = शरीर । पूगीधर = पूँगीवाला । गोड़िया = सँपेरा । मिणधर = मणिधर = मणिधारी सर्प । माय = मे । छावड़ = छवड़ी, टोकरी, डलिया ।

महि दाधण मेवाड, राड़ धाड अकबर रचै।
विषै विषायत बाड, प्रथुळ पहाड प्रतापसी ॥२३॥
बधियो अकबर वैर, रसत गैर रोकी रिपू।
कद मूळ फळ कैर, पावै राण प्रतापसी ॥२४॥
भागै सागै भाम, अम्रत लागै ऊमरा।
अकबर तळ आराम, पेपै जहर प्रतासी ॥२५॥
अकबर मैगळ अच्छ, मांझळ दळ धूमै मसत।
पचानन पळ भच्छ, पटकै छडा प्रतापसी ॥२६॥

भावार्थ—पूँगीवाला चतुर सँपेरा अकबर बहुत छटपटा रहा है, पर मणिधारी साँपरूपी राणा प्रताप उसकी छगड़ी मे नहीं आता।

२३—दाधण = दबाने के लिये, हड़पने के लिये। राड़ = लड़ाई। धाड़ = धावा। विषै विषायत = हानि सहन करनेवाला, कष्ट-सहिष्णु। बाड = काँटों की दीवार, रोक। प्रथुळ = बड़े।

भावार्थ—मेवाड़ की भूमि को हड़पने के लिये अकबर लड़ाई और धावे करता है। परन्तु उसके (मेवाड़ के) कष्ट सहिष्णु राणा प्रताप रूपी बडे पहाड की रोक लगी हुई है।

२४—रसत = रसद, फौज के लिये खाने-पीने आदि का सामान। गैर = घेर कर।

भावार्थ—अकबर से वैर बँध गया, इसलिए शत्रु ने घेर कर चारों ओर से रसद रोक दी। फिर भी प्रताप को कद, मूल, फल, कैर आदि तो खाने को मिल ही जाते हैं।

२५—सागै = साथ। भाम = स्त्री। ऊमरा = गूलरके फल। तळ = नीचे, अधीनता में। पेपै = समझते हैं, मानते है।

भावार्थ—महाराणा अपनी स्त्री के सहित भागते फिरते है और गूलर के फल उनको अमृत के समान मीठे लगते हैं। परन्तु अकबर की अधीनता में सुखपूर्वक रहने को वे जहर समझते हैं।

२६—मैंगळ = हाथी। अच्छ = श्रेष्ठ। मांझळ = मध्य। मसत = मस्त। पचानन = सिंह। पळ भच्छ = मासाहारी। छड़ा = पजा।

घट सूं ओघट घाट, घसिया अकबरिये घणो ।
इळ चनण उपवाट, परमळ उठी प्रतापसी ॥२७॥
अकबर जतन अपार, रात दिवस रोकण करै ।
पूगी समदां पार, पगी राण प्रतापसी ॥२८॥
वड़ी विपत सह वीर, वड़ी कीत पाटी वसू ।
धरम धुरधर धीर, पौरस धिनो प्रतापसी ॥२९॥
वसुधा किया विख्यात, समरथ कुळ सीसोदिया ।
राणा जसरी रात, प्रगट्यो भला प्रतापसी ॥३०॥

भावार्थ--अकबर श्रेष्ठ हाथी के समान मस्त होकर सेना के बीच मे घूमता है । लेकिन मांसाहारी सिंह के समान महाराणा प्रताप उसे पंजा मार कर गिरा देता है ।

२७--घट = उचित । ओघट = अनुचित । घाट = ढंग । घसियो = घिसा, दुख दिया । इळ = पृथ्वी । घणो = बहुत । चनण = चंदन । परमळ = परिमल, सुगंध ।

भावार्थ--अकबर ने उचित और अनुचित ढंग से (प्रताप को) बहुत दुख दिया । परन्तु इससे पृथ्वी पर प्रतापसिंह-रूपी चंदन से तो सुगंध ही प्रकट हुई अर्थात् उनकी कीर्ति ही फैली ।

२८--पंगी = कीर्ति । पूगी = पहुँच गई ।

भावार्थ--प्रतापसिंह की कीर्ति को रोकने के लिये अकबर रात-दिन अपार यत्न करता रहा है, फिर भी उसकी कीर्ति समुद्रों के पार पहुँच गई ।

२९--कीत = कीर्ति । पाटी = प्राप्त की । धिनो = धन्य है । वसू = पृथ्वी ।

भावार्थ--हे वीर प्रतापसिंह ! तूने बड़ी बड़ी विपत्तियों को सहन करके भी पृथ्वी पर बड़ी कीर्ति उपार्जित की है । हे धर्मधुरीण धीर ! तेरा पौरुष धन्य है ।

३०--भावार्थ--हे महाराणा प्रताप ! तुमने यश की रात्रि मे भला ही जन्म लिया कि जिससे पृथ्वी पर सामर्थ्यवान् सीसोदिया वंश का नाम प्रख्यात हुआ ।

जिण रो जस जग माहि, जिणरो जग धिन जीवणो।
नेड़ो अपजस नाँहि, पणधर धिनो प्रतापसी ॥३१॥
अजरामर धन एह, जस रह जावे जगत में।
दुख सुख दोनू देह, सुपन समान प्रतापसी ॥३२॥
अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी सूरमा ॥३३॥
मन री मन रै माहि, अकबर रै रहगी इकस।
नरवर करिये नांहि, पूरी राण प्रतापसी ॥३४॥
अकबरियो हत आस, अव पास भाषै अधम।
नाषे हिये निसास, पास न राण प्रतापसी ॥३५॥

३१—जिण रो = जिसका। नेडो = नज़दीक।

भावार्थ—ससार मे जिसका यश है उसी का जीवन धन्य है। अपयश को पास नहीं आने देना, इस प्रण को धारण करने वाले हे प्रताप! तुम धन्य हो।

३२—एह = यह। सुपन = स्वप्न।

भावार्थ—हे महाराणा प्रताप! जगत मे यश रह जाय, यही अजर और अमर धन है। देह मे दुख और सुख तो स्वप्न के समान (अस्थिर) है।

३३—जासी = चला जायगा। पासी = प्राप्त करेंगे।

भावार्थ—अकबर (संसार छोड कर) चला जायगा। दिल्ली को दूसरे प्राप्त करेंगे। परन्तु हे पुण्य-राशि शूरवीर प्रताप! तेरा यश संसार से कदापि नहीं जायगा।

३४—इकस = ईर्षा, लालसा।

भावार्थ—अकबर की इच्छा उसके मन ही मन मे रह गई। हे नरोत्तम! राणा प्रताप उसको पूरी मत करना अर्थात् उसकी अधीनता स्वीकार मत करना।

३५—हत आस = हतास। अव पास = आमखास। भाषै = देखता नाषै = डालता है। निसास = निश्वास।

भावार्थ—अकबर नाउम्मीद होकर आमखास को देखता है और प्रताप को पास न देख कर हृदय से निश्वास छोड़ता है।

गीत

आयां दळ सबळ सामहो आवै,
　　रंगियै खग खत्रवाट रतो ।
ओ नर नाह नमो नहँ आवै,
　　पतसाहण दरगाह पतो ॥१॥
दाटक अनड़ दंड नह दीधो,
　　दोयण घड़ सिर दाव दियो ।
मेळ न कियो जाय विन महला,
　　केलपुरै खग मेळ कियो ॥२॥
अणनत रूक अवनि आहाटिया,
　　नाग झड़िया नहँ थका ।
नरां पाड़िया सारटिया चढ़िया
　　ना नीठिया पड़ी नका ॥३॥

१—सामहो = सामने । रंगियै खग = रक्त-रंजित खड्ग । खत्रवाट-रत = क्षात्र धर्म में रत । नमो = झुक कर । पतसाहण दरगाह = बादशाह के दरबार में । पतो = प्रतापसिंह ।

भावार्थ—(अकबर की) बलवती सेना के आने पर क्षात्र-धर्म परायण, नरश्रेष्ठ महाराणा प्रताप रक्तरंजित तलवार लेकर उसके सामने आता है । पर सर झुकाकर बादशाह के दरबार में नहीं आता ।

२—दाटक = सुदृढ, पराक्रमी । अनड़ = अनम्र । दंड = जुरमाना, खिराज । नह दीधो = नहीं दिया । दोयण = शत्रु । घड़ = सेना । मेळ = संधि । केलपुरै = केलवाड़ा में; यह स्थान मेवाड़ की वर्तमान राजधानी उदयपुर से लगभग ३८ मील उत्तर दिशा में है । महाराणा हंमीर के समय में यह कुछ दिनों तक मेवाड की राजधानी भी रहा था । इसलिये मेवाड के महा-राणाओं के लिये प्राचीन ग्रंथों में कहीं कहीं केलपुरे भी लिखा मिलता है जिसका अर्थ है केलपुरा के अधिपति ।

भावार्थ—अनम्र और प्रतापी राणा प्रतापसिंह ने कभी खिराज नहीं दिया, वल्कि शत्रु-सैन्य के सिर पर धावा ही किया । केलपुरे के अधिपति राणा (प्रताप) ने महलों

आग्री अणी रहै ऊदावत,
साखी आलम कलम सुणो।
राणे अकबर वार राखियौ,
पातळ हिंदू धरम पणो ॥४॥

—:o:—

मे जाकर कभी बादशाह से संधि नहीं की। उसने तलवार ही से भेट की।

३—असपत इन्द्र=बादशाहरूपी इन्द्र। आह्वड़ियाँ=आक्रमण करने पर। धारा झड़ियाँ=खड्ग-प्रहार, तलवारों की झड़ियाँ। घण=अनेक। सांकड़ियाँ घड़ियाँ=बुरी घड़ियाँ; संकट का समय। धीहड़ियाँ=पुत्रियाँ। नका=निकाह।

भावार्थ—बादशाहरूपी इन्द्र जब उसकी भूमि पर आक्रमण करता है तब वह तलवारों की झड़ियों मे धक्के सहता है और बहुत बुरे दिनों मे भी उसकी पुत्रियों ने निकाह नहीं पढ़ा अर्थात् विवाह नहीं किया।

४—अणी=नोक, अग्र भाग। ऊदावत=उदयसिंह का पुत्र। आलम=संसार। कलम=यवन, मुसलमान। वार राखियौ= उबार कर रखा। पातळ=प्रतापसिंह। हिन्दू धरम पणों= हिन्दुत्व।

भावार्थ—उदयसिंह का पुत्र प्रताप सदैव (सेना के) आगे रहता है और उसने हिन्दू धर्म की रक्षा की। इस बात के साक्षी संसार और यवन सब हैं।

बाँकीदास

कविराजा बाँकीदास का जन्म मारवाड़ राज्य के पचभदरा परगने के भाडियावास गाँव में वि० स० १८३८ में हुआ था। ये आशिया शाखा के चारण थे। उनके पिता का नाम फतहसिंह था जो डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। बाँकीदास ने पहले अपने घर ही पर थोड़ा सा पढ़ना—लिखना सीखा और डिंगल कविता का अभ्यास किया। फिर अपने गाँव से जोधपुर चले गये जहाँ भिन्न भिन्न गुरुओं से भाषा के काव्य—ग्रंथ, व्याकरण में सारस्वत और चंद्रिका, साहित्य में कुवलयानंद तथा काव्य-प्रकाश आदि विभिन्न ग्रंथों का अच्छा अध्ययन किया। वि० स० १८६० में इनकी जोधपुर के तत्कालीन महाराजा मानसिंह से भेंट हुई। महाराजा मानसिंह बड़े गुणग्राही, काव्यप्रेमी और सरस्वती के सेवक थे। बाँकीदास के प्रौढ़ ज्ञान और काव्य—चमत्कार को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और अपने राजकवियों में स्थान देकर इन्हें गौरवान्वित किया। कालान्तर में महाराजा मानसिंह ने इनको अपना गुरु बनाया और कविराजा की उपाधि, पाँव में सोना, ताजीम आदि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। गुरु—शिष्य का सम्बन्ध सूचित करने के अभिप्राय से उक्त महाराजा ने इन्हें कागजों पर लगाने की मोहर रखने का मान भी दे रक्खा था, जिस पर निम्नलिखित शब्द अंकित थे :—

श्रीमन् मान धरणि पति, बहु गुन रास।
जिन भाषा गुरु कीनो, बाँकीदास॥

बाँकीदास संस्कृत, डिंगल, फारसी तथा ब्रजभाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे और आशु कवि होने के साथ साथ इतिहास के भी भारी ज्ञाता थे। कहा जाता है कि एक बार ईरान का कोई सरदार भारतवर्ष में भ्रमण करता हुआ जोधपुर आया और महाराजा मानसिंह से मुलाकात करते समय बोला कि यदि आप के यहाँ कोई अच्छा इतिहासवेत्ता हो तो मैं उससे मिलना चाहता हूँ। इस पर महाराजा ने बाँकीदास को उसके पास भेजा। बाँकीदास के ऐतिहासिक ज्ञान, उनकी स्मरणशक्ति और उनके काव्य-चमत्कार को देख कर वह दंग रह गया और जिस समय जोधपुर से जाने लगा, महाराजा से कह गया कि जिस आदमी को आपने मेरे पास

भेजा था वह इतिहास का पूर्ण ज्ञाता ही नहीं, वरन् उच्च कोटि का कवि भी है। इतिहास का ऐसा पूर्ण और पुख्ता ज्ञान रखनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति मेरे देखने में अभी तक नहीं आया। इसे समस्त भूमण्डल के इतिहास का भारी ज्ञान है। मैं ईरान का रहनेवाला हूँ, पर ईरान का इतिहास भी मुझसे अधिक जानता है।

बाँकीदास का अन्तकाल वि० सं० १८६० में श्रावण सुदी ३ को जोधपुर में हुआ था। इनकी मृत्यु से महाराजा मानसिंह को असीम दुःख हुआ और निम्नलिखित शब्दों द्वारा उन्होंने अपने शोकोद्गार प्रकट किये :—

> सद्विद्या बहु साज, बाकी थी बाका बसु।
> कर सूधी कविराज, आज कठीगो आशिया ॥१॥
> विद्या कुळ विख्यात, राज काज हर रहसरी।
> बाका तो विण बात, किण आगळ मनरी कहा ॥२॥[1]

इनके ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

(१) सूर-छत्तीसी, (२) सीह-छत्तीसी, (३) वीर-विनोद (४) धवळ-पच्चीसी, (५) दातार-बावनी, (६) नीति-मंजरी, (७) सुपह-छत्तीसी, (८) वैसक-वार्ता, (९) मावडिया-मिजाज, (१०) कृपण-दर्पण, (११) मोह-मर्दन, (१२) चुगल-मुख-चपेटिका, (१३) वैस-वार्ता, (१४) कुकवि-बत्तीसी, (१५) विदुर-बतीसी, (१६) भुरजाल-भूषण, (१७) गंगा-लहरी, (१८) भमाल नखशिख, (१९) जेहल-जस जडाव, (२०) सिद्धराय-छतीसी, (२१) संतोष बावनी, (२२) सुजस छत्तीसी, (२३) वचन विवेक पचीसी, (२४) कायर बावनी, (२५) कृपाण पचीसी, (२६) हमरोट-छत्तीसी, (२७) स्फुट संग्रह।

उपरोक्त ग्रन्थों को नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने तीन भागों में प्रकाशित किया है। इनके सिवा बाँकीदास के पाँच-सात दूसरे ग्रन्थों और २८०० के लगभग ऐतिहासिक बातों का पता भी हाल ही में लगा है।

---

१ हे बाकीदास! तेरी सुविद्यारूपी सामग्री के कारण पृथ्वी पर बहुत बाँकापन (निरालापन) था। हे आशिया! आज उसे सीधी कर के तू कहाँ चला गया? ॥१॥ विद्या और कुल में विख्यात हे बाँकीदास! तेरे बिना राज-कार्य की प्रत्येक गुप्त बात को किस के आगे कहें? ॥२॥

वृन्द, गिरधर कविराय आदि हिन्दी के सूक्तिकार कवियों के समान बाँकीदास की रचना में भी उपदेशात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता दृष्टिगत होती है। निस्सन्देह इन्होंने थोड़ी सी ऐसी कविताएँ भी लिखी हैं, जिनमें इनके आश्रय-दाता महाराजा मानसिंह तथा उनके पूर्वजों के कीर्ति-कलापों के गीत गाये गये हैं। पर इन कविताओं का साहित्यिक दृष्टि से उतना मूल्य नहीं है जितना इतिहास की दृष्टि से है। इनकी कविता के मुख्य विषय हैं—सूर, कायर, दानी, सूमी, विदुर, संतोष, चुगलखोर, कुकवि इत्यादि। इन विषयों के वर्णन में इन्होंने बहुत स्पष्टवादिता और निर्भीकता से काम लिया है; पर भावावेश में कहीं कहीं इतने आगे बढ़ गये हैं कि भद्दता और अश्लीलता की बू आ गई है। ये वीररस के निरूपण में भी सिद्धहस्त थे। अपने 'भूरजाल भूषण' ग्रन्थ में इन्होंने चित्तौड़गढ़ का ऐसा मार्मिक, सबल और लोमहर्षण वर्णन किया है कि पढ़ते ही भुजाएँ फड़कने लगती हैं।

बाँकीदास की भाषा बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं विषयानुकूल है और प्रसाद गुण तो उनकी एक ऐसी विशेषता है जो डिंगल के बहुत कम कवियों में पाई जाती है। अलंकारों पर बाँकीदास की दृष्टि कुछ विशेष रहती थी, मुख्यतः अर्थालंकारों पर। यों तो ढूँढ़ने से साहित्य-प्रसिद्ध प्रायः सभी अलंकार इनकी रचना में मिल जायँगे पर हेतु, उदात्त आदि अलंकारों की ओर इनका झुकाव कुछ अधिक था, यह बात इनकी रचना से स्पष्ट झलकती है।

बाँकीदास की थोड़ी सी कविताएँ हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

दोहे

नमस्कार सूरा नराँ, पूरा सतपुरसाँह ।
भारथ गज थाटाँ भिडै, अडै भुजाँ उरसाँह ॥१॥

१—सतपुरसाँह = सुपुरुषों को। भारथ = युद्ध में। थाट = समूह। अडै = जा लगते हैं। उरसाँह = आकाश।

भावार्थ—उन पूर्ण वीर सत्पुरुषों को नमस्कार है जो युद्ध में हाथियों के समूह से जा भिडते हैं और जिनकी भुजाएँ आकाश से जा लगती हैं।

कापुरसॉ फिट कायरॉ, जीवण लालच ज्यॉह ।
अरि देखे आराण मे, तृण मुख माँझळ त्यॉह ॥२॥
सूर न पूछै टीपणौ, सुकन न देखै सूर ।
मरणॉ नू मगळ गिणै, समर चढे मुख नूर ॥३॥
कायर घर आवण करै, पूछै ग्रह दुज पास ।
सरग वास खारौ गिणै, सब दिन प्यारौ सास ॥४॥
कृपण जतन धन रौ करै, कायर जीव जतन्न ।
सूर जतन उण रौ करै, जिण रौ खाधौ अन्न ॥५॥
सूरातन सूरॉ चढै, सत सतियॉ सम दोय ।
आडी धारा ऊतरै, गणै अनळ नू तोय ॥६॥

२—फिट = धिकार है । आराण = युद्ध मे । मॉझळ = मे । त्यॉह = उनके ।

भावार्थ—कुपुरुष कायरों को धिक्कार है जो जीने के लोभ से शत्रु को युद्ध मे देखते मुँह मे तिनका ले लेते है ।

३—टीपणौ = पचाँग । सुकन = शकुन । नूँ = को । नूर = तेज, कांति ।

भावार्थ—शूरवीर (ज्योतिषी के पास जाकर) युद्ध के लिये मुहूर्त्त नहीं पूछता, शूर शकुन नही देखता । वह मरने मे ही मगल समझता है और युद्ध मे उनके मुँह पर तेज चमक आता है ।

४—दुज = द्विज, ब्राह्मण । खारौ = बुरा, ख़राब । सास = सॉस, प्राण ।

भावार्थ—कायर पुरुप वापस घर आने की सोचता है, वह ब्राह्मण से अपने ग्रह पूछता है । उसे सदैव अपना प्राण प्यारा लगता है और स्वर्गवास को वह बुरा समझता है ।

५—उण रौ = उसका । खाधौ = खाया है ।

भावार्थ—मूँजी अपने धन की रक्षा का यत्न करता है और कायर अपने प्राण की रक्षा का । लेकिन शूरवीर उसकी रक्षा का यत्न करता है जिसका अन्न उसने खाया है ।

६—सूरातन = शूरत्व । सत = सतीत्व, पति के साथ जलने का आवेश । आड़ी धारा ऊतरै = तलवार से कटते हैं ।

जाया रजपूताणियां, वीरत दीधी वेह ।
प्राण दिये पाणी पुणग, जावा न दिये जेह ॥७॥
भड़ां तिकां भामणां, केम करूं वखाण ।
पड़ियै सिर पड़ै न धड़, कर वाहै केवाण ॥८॥
सूर भरोसे आपरै, आप भरोसै सीह ।
भिड़ दहूं, ऐ भाजै नहीं, नहीं मरण रो वीह ॥९॥
घर आंगण मांहे घणा, त्रासे पड़िया ताव ।
जुध आंगण सोहै तिके, वालम वास वसाव ॥१०॥

भावार्थ—शूरवीरों मे वीरत्व चढ़ता है और सतियो मे सतीत्व। ये दोनों समान है। (शूरवीर) तलवार से कटते हैं और (सतिया) अग्नि को जल समझती है।

७—जाया = जन्म दिया। वीरत = वीरता। दीधी = दी, प्रदान की। वेह = विधाता ने। पांणी = तेज को। पुणग = तनिक भी।

भावार्थ—(वीरों को) राजपूतनियों ने जन्म दिया और विधाता ने वीरता प्रदान की, जो प्राणों को देकर भी अपनी प्रतिष्ठा को किंचित मात्र भी नहीं जाने देते।

८—भामणै = बलिहारी है। वाहै = चलाते है। केवाण = तलवार। वखांण = प्रशसा।

भावार्थ—उन वीरो की बलिहारी है, प्रशसा कैसे की जाय जिनका सर कट जाने पर भी धड जमीन पर नहीं गिरता और हाथ तलवार चलाते रहते है।

९—सीह = सिंह। ऐ = ये। वीह = भय।

भावार्थ—शूरवीर और सिंह अपने भरोसे पर रहते है। ये दोनो एक बार भिड जाने पर फिर नही भागते, इनको मृत्यु का भय नहीं।

१०—मांहे = मध्य, मे। ताव = संताप, सकट। त्रासै = भयभीत हो जाते है।

भावार्थ—घर के आँगन मे शोभा देने वाले बहुत है जो कष्ट आ पड़ने पर भयभीत हो जाते है। हे प्रिय! जो रणांगण मे शोभा देनेवाले हों उनके पास बास बसाओ (घर बसाओ)।

सखी अमीणौ साहिबो, वाँकम सू भरियौह ।
रण विकसै रितुराज मै, ज्यूं तरवर हरियौह ॥११॥
सखी अमीणौ साहिबो, निरभै काळो नाग ।
सिर राखै मिण सामध्रम, रीझै सिंधू राग ॥१२॥
सखी अमीणौ साहिबो, सूर धीर समरत्थ ।
जुध मे वामण डड जिम, हेली वाधै हत्थ ॥१३॥
सखी अमीणा कथ री, पूरी एह प्रतीत ।
कै जासी सुर ध्रगडै, कै आसी रण जीत ॥१४॥
छूटा जामण मरण सू, भवसागर तिरियाह ।
मुँव जूँझ जे रण मही, वे नर ऊवरियाह ॥१५॥

११—अमीणो = हमारा, मेरा । वाँकम = वक्रपन । विकसै = विकसित होता है । ऋतुराज = वसत । साहिबो = प्रीतम ।

भावार्थ—हे सखी ! मेरा पति वक्रपन से भरा हुआ है। युद्ध मे वह इस तरह प्रफुल्लित होता है जिस तरह वसंत मे वृक्ष ।

१२—निरभै = निडर । काळौ नाग = काला सर्प । मिण = मणि । सिंधू राग = वीररस वर्द्धक राग । सांमध्रम = स्वामि भक्ति ।

भावार्थ—हे सखी ! मेरा प्रीतम निडर, काला साँप है जो अपने मस्तक पर स्वामिभक्तिरूपी मणि को धारण करता है और सिधू राग को सुन कर रीझता है ।

१३—वामण दंड = वामनावतार के दड के समान । हेली = हे अलि, हे सखी । वाधै = वढते है ।

भावार्थ—हे सखी ! मेरा पति शूरवीर, धीर और समर्थ है । हे सखी ! युद्ध मे उसके हाथ वामनावतार (विष्णु) के दड के समान बढ़ते हैं ।

१४—एह = यह । प्रतीत = विश्वास । सुर ध्रगड़े = देवताओं के गावँ, स्वर्ग ।

भावार्थ—हे सखी मेरे पति का यह पूरा भरोसा है कि या तो वह स्वर्ग को जायगा या युद्ध को जीत कर आवेगा ।

१५—जामण = जन्म । तिरियाह = तैर गये, पार कर गये । मुँवा = मरे । जूँझ = युद्ध करके । मही = मे । ऊवरियाह = अमर हो गये ।

हाथळ बळ निरभै हियो, सरभर न को समत्थ ।
सीह अकेला संचरे, सीहा केहा सत्थ ॥१६॥
वाघ करै नह कोट वन, वाघ करै नह वाड ।
वाघा रा वघवाव सूं, झिलै अगंजी झाड ॥१७॥
गाज, इतै उखेड़ गज, माझळ वन तर मूळ ।
जागै नह थह में जितै, सझ हाथळ सादूळ ॥१८॥
मैगळ एथी आव मत, वाघा केरी वाट ।
सांप अंगूठा मेळ ज्यूं, कदियक हुसी कुघाट ॥१९॥

भावार्थ—जो मनुष्य युद्ध करके रण-भूमि में मरे, वे जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो गये, भवसागर से पार हो गये और अमर गये ।

१६—हाथळ = पंजा । हियो = हृदय । सरभर = समानता करने को । को = कोई भी । समत्थ = समर्थ । केहा = कैसा ।

भावार्थ—पंजे के बल पर सिंह हृदय में निडर है, उसकी समानता करने वाला कोई भी दूसरा नहीं । सिंह अकेला ही घूमता है । सिंहों का साथी कौन ?

१७—वाघ = (सं० व्याघ्र) सिंह । कोट = प्राकार । वाड = काँटों की दीवार । वघवाव सूं = व्याघ्र के शरीर की गंध से । झिलै = उन्नति के शिखर पर पहुँचते है । अंगजी = अपराजित । झाड़ = वृक्ष ।

भावार्थ = सिंह वन के चारो ओर न तो कोट बनाता है और न काँटो की दीवार लगाता है सिंहो के शरीर की गंध ही से छोटे छोटे वृक्ष उन्नति के शिखर पर पहुँच जाते हैं ।

१८—ऊखेड़ = उखाड़ । माझळ = मे । तर = वृक्ष । थह = माँद । जितै = जब तक । सादूळ = (सं० शार्दूल) सिंह ।

भावार्थ—हे गज ! जब तक सिंह अपनी माँद मे जग न जाय और अपने पंजे को ठीक न कर ले तब तक तू गरज ले और वन के वृक्षो की जड़े उखाड़ ले ।

१९—मैगळ = हाथी । एथी = इधर; वघाँ केरी = सिंहों के । वाट = मार्ग । साँप अँगूठा मेळ ज्यूँ = साँप और अँगूठे के मेल की तरह; सहसा; दैवात् । कदियक = किसी दिन । कुघाट = बुरा हाल । हुसी = होगा ।

सूतो थाहर नींद सुख, सादूळौ बळवत ।
वन काठै मारग वहै, पग पग हौळ पड़त ॥२०॥
सीहाँ देस विदेस सम, सीहाँ किसा उतन्न ।
सीह जिकै वन सञ्चरै, को सीहाँरौ वन्न ॥२१॥
केहर कुंभ विदारियौ, गजमोती खिरियाह ।
जाँणे काळा जळद गूँ, ओळा ओसरियाह ॥२२॥
कुण दूजे चाले कहो, मृगपति वाळे माग ।
जुध मे काचा ताग जिम, तोडै ऊमर ताग ॥२३॥

भावार्थ—हे हाथी ! इधर सिंहों के मार्ग की तरफ मत आ । साँप और अगूठे के मेल की तरह किसी दिन तेरा बुरा हवाल होगा (अर्थात् किसी दिन अचानक मारा जायगा) ।

२०—थाहर = माँद । काठे = समीप । हौल पड़ंत = डबके पड़ते हैं, घबड़ाता है । वहै = चलते हुए ।

भावार्थ—बलवान् सिंह अपनी माँद मे सुखपूर्वक सोया हुआ है । पर उस वन के पास वाले मार्ग पर चलते हुए हाथी के मन मे पग पग पर डबके पड़ रहे है (अर्थात् उसके मन मे यह भय बसा हुआ है कि अचानक कहीं से आकर सिंह उस पर हमला न कर दे)

२१—उतन्न = वतन ।

भावार्थ—सिंहो के लिये देश-विदेश बराबर हैं । सिंहो का वतन कैसा ? सिंह जिन वनो मे पहुँच जाते हैं वे ही वन उनके अपने स्वदेश हो जाते हैं ।

२२—खिरियाह = गिरे । ओळा = ओले । ओसरियाह = बरसने लगे ।

भावार्थ—सिंह ने हाथी का कुंभस्थल फोड़ दिया जिससे गजमोती बिखर पड़े । ऐसा जान पड़ता था मानो काले बादल से ओले बरसने लगे हों ।

२३—कुण = कौन । दूजे = दूसरा । माग = मार्ग । ताग = धागा ।

भावार्थ—कहिये, सिंह के मार्ग पर और दूसरा कौन चल सकता है ? वह युद्ध मे कच्चे धागे के समान अपने आयुरूपी तंतु को तोड़ डालता है ।

घाल घणा घर पातळा, आयौ थह मे आप।
सूतो नाहर नींद सुख, पौहरौ दियै प्रताप ॥२४॥
केळ रहै नित कांपती, कायर जणे कपूर।
सीहण रण सांकै नहीं, सीह जणे रण सूर ॥२५॥
चमर ढुळै नह सीह सिर, छत्र न धारै सीह।
हाथळ रा बळ सूं हुवौ, औ मृगराज अबीह ॥२६॥
वन माझळ वघवाव सूं, दुरद विसूकै डाण।
जेठ लुवां सूकत जिम, निरजल देख निवाण ॥२७॥
अळियळ आज करत नह, गयंद कपोळां गान।
सिंहनाद मद सूकियौ, औ कीजै अनुमान ॥२८॥

२४—घाल = करके। घणा = बहुत। पातळा = पतले। थह = मॉद।

भावार्थ—बहुत से घरों को पतला बनाकर (बहुत से घरों के मनुष्यों को मार कर) सिंह अपनी मॉद में आया और सुखपूर्वक निद्रा में सो रहा। उसका प्रताप (आतंक) उसका पहरा देने लगा।

२५—केळ = कदली का वृक्ष। जणे = पैदा करके। सीहण = सिंहनी।

भावार्थ—कायर कपूर को जन्म देकर केल हमेशा कॉपती रहती है। रणवीर सिंहों को पैदा करके सिंहनी डरती नहीं है।

२६—औ = यह। अबीह = निर्भय।

भावार्थ—सिंह के सिर पर चँवर नहीं डुलाये जाते और सिंह कभी मस्तक पर छत्र धारण नहीं करता। सिंह अपने पंजे के बल से ही निर्भय हुआ है।

२७—माझळ = में। वघवाव सूं = सिंह के शरीर की गंध से। दुरद = हाथी। विसूकै = सूख जाता है। डांण = मद। जेठ लुवॉ = जेठ महीने की लुओं से। निवांण = जलाशय।

भावार्थ—वन में सिंह के शरीर की गंध से हाथी का मद सूख जाता है, जिस तरह जेठ महीने की लू से जलाशय सूखे दीख पड़ते है।

२८—अळियळ = भ्रमर।

(२)

साह तणा खूनी सबळ, आय बचै इण ठोड ।
औ सातू अकलीम में, चावो गढ़ चीतोड ॥१॥
दिन दुलहा माणीगरा, इण गढ़ रा धणियांह ।
आणी सींगल दीप सू, पेखे पदमणियांह ॥२॥
आगै इण गढ़ वासतै, समर हुआ जग साख ।
सात लाख हिंदू मुवा, असुर अठारे लाख ॥३॥
जठै प्रतपियौ प्रगट जो, हर अवतार हमीर ।
नीसरतो जूडा महीं, नित निरझर नद नीर ॥४॥

भावार्थ—हाथी के कपोलों पर आज भ्रमर गुंजार नहीं कर रहे हैं। यह अनुमान होता है कि सिंहनाद से उनका मद सूख गया है।

१—साह तणा = बादशाह के । खूनी = अपराधी । आय बचै = आकर बच जाते हैं । इण = इस । ठोड़ = जगह । औ = यह । सातूं = सातों । अकलीम = विलायत । चावो = प्रसिद्ध ।

भावार्थ—बादशाहों के सबल अपराधी इस स्थान (चित्तौड़) में आकर बच जाते हैं, यह चित्तौड़-दुर्ग सातों विलायतों में प्रसिद्ध है।

२—दिन दुलहा = बाँके वीर । माणीगरा = भोगी । धणियांह = स्वामियों ने । सींगल दीप सू = सिंहल दीप से । आणी = लाए । पेखे = देख कर ।

भावार्थ—इस गढ़ के बाँके वीर स्वामी सिंहलद्वीप से पद्मिनी नारियों को देख कर लाये ।

३—जग साख = संसार साक्षी है । मुवा = मरे । आगै = पहले, प्राचीन काल में ।

भावार्थ—पहले इस गढ़ के लिये अनेकों युद्ध हुए जिसका संसार साक्षी है। (इन युद्धों मे) सात लाख हिंदू और अठारह लाख यवन काम आये ।

४—जठै = जहाँ । प्रतपियौ = राज्य किया । हमीर = महाराणा हंमीर, इन्होंने वि० स० १३८२ मे चित्तौड़ को मुसलमानों से छीन लिया और ३८ वर्ष तक राज्य कर वि० सं० १४२१ मे

सिर मांडव गुजरात सिर, दळ सझ कीधी दौड़ ।
उण सांगा रो वैसणो, चगो गढ़ चीतौड़ ॥५॥
सब दिन गोमुख कुंडसिर, पाणी सू भरपूर ।
अन भुरजाळा भुरज सा, गढ़ चीतौड़ कगूर ॥६॥
नीसरणी लागै नहीं, लागै नहीं सुरग ।
लड़ नहिं लीधो जाय ओ, दीधो जाय दुरग ॥७॥
पर गढ़ लेणा रोप पग, अरि सिर देणा तोड़ ।
भग हूंत नहिं धापणो, खूदाळमा न खोड़ ॥८॥

स्वर्गवासी हुए । नीसरतौ = निकलता था । जूडा महीं = केशों के जटा-जूट मे से । निरझर नद नीर = गंगाजल ।

भावार्थ—जहां शिव का अवतार राणा हमीर हुआ, जिसके जटा-जूट में से निरंतर गंगा-जल निकलता था ।

५—सिर मांडव = मांडू पर । मांडू = मालवे की प्राचीन राजधानी । गुजरात सिर = गुजरात पर । दळ सझ = सेना सजाकर । कीधी दौड़ = चढ़ाई की । उण = उस । वैसणो = निवास स्थान, राजधानी ।

भावार्थ—मांडू और गुजरात के बादशाह पर दल जोड़ कर जिस राणा सांगा ने (संग्रामसिंह ने) चढाई की चित्तौड उसी की राजधानी थी ।

६—गोमुख कुंड = चित्तोडगढ़ का प्रसिद्ध कुंड जो साल भर तक पानी से लबालब भरा रहता है । अन = अन्य । भुरजाळां = गढ़ । भुरज सा = बुर्ज के समान । कगूर = कगूरा ।

भावार्थ—गोमुख का कुड सदा पानी से लबालब भरा रहता है और अन्य गढों की बुर्जें चित्तौड के कगूरों के समान है ।

७—लीधो जाय = लिया जाय । दुरंग = दुर्ग ।

भावार्थ—इसके न तो निसेनी लगती है और न सुरग लगता है । यह गढ लडकर नही लिया जा सकता, देने से जाता है ।

८—पर = शत्रु का, परायों का । लेणा = लेना । रोप पग = पाँव जमाकर । हूंत = से । धापणों = तृप्त होना; संतुष्ट होना । खूदाळमां = वीर पुरुषों मे । खोड़ = दोप ।

की बाँधव की दीकरा, हुकम दिए जो फेर।
पातसाह जानू पकड, चाढ़े गढ ग्वालेर ॥९॥
राखै राण बराबरी, आतपत्र उतबग।
ते अकबर खड आवियो, गाँजण चीत दुरग ॥१०॥
के मुलतानी काबळी, पेसावरी प्रचण्ड।
नेसापुर रा नीपना, बगदादी बळ बड ॥११
सामी रूमी सजरी, गोरी कासगरीह।
ईरानी यमनी अड्डर, सीराजी रनसीह ॥१२॥
बलखी हिलबी बाबरी, रूसी तूसी रोद।
औ लै अकबर आवियो, सज ऊभा सीसोद ॥१३॥

भावार्थ—पाँव जमाकर शत्रु का गढ़ लेने से, उसका सिर तोड़ने से और पृथ्वी को जीत कर भी संतुष्ट न होने से वीर पुरुषों को दोष नहीं लगता।

९—की = क्या। बाँधव = बंध वर्ग। दीकरा = बेटे। हुकम दिए जो फेर = हुक्म को नहीं माना। जानू = उनको। चाढे = भेज दिये।

भावार्थ—क्या भाई और क्या बेटे, जिस किसी ने भी हुक्म को न माना बादशाह ने उसको ग्वालियर के क़िले मे भेज दिया।

१०—आतपत्र = छत्र। उतबग = उत्तमांग, मस्तक। खड़ आवियो = चढ़ आया। गांजण = तोड़ने को। चीत दुरग = चित्तौड़ का दुर्ग।

भावार्थ—राणा (उदयसिंह) ही अकबर की बराबरी करता और मस्तक पर छत्र धारण करता है। इसलिये चित्तौड के दुर्ग को तोडने के लिये अकबर उस पर चढ आया।

११-१३—के = कितने ही। रा = का, के। नीपना = उत्पन्न हुए। नेसापुर रा नीपना = नेसापुर मे जन्मे हुए, नेसापुरी। औ लै = इनको लेकर। सज ऊभा सीसोद = सीसोदिये भी सज कर खड़े हो गये।

भावार्थ—उसकी सेना मे कितने ही मुलतानी, काबुली, प्रचंड पेशावरी, नेशापुरी, बग़दादी, श्यामी, रूमी, संजरी गोरी,

चकतो अकबर चक्कवै, पतसाहाँ पतसाह ।
चतुरंगी फौजां चढ़ै, दिए दुरंगा ढाह ॥१४॥
अकबर साह जलालदी, खितवा वली खुदाय ।
बाजदार कर बंदगी, ताजदार होय जाय ॥१५॥
जाफरान नेपत जठै, पग पग मीठा नीर ।
सदा विराजै सारदा, सो लीधो कस्मीर ॥१६॥
गुड पाखर पूरब गयो, नभ ओ वसते सीस ।
आटो करे उजाविया, जेण पटाणा पीस ॥१७॥

काशगरी, ईरानी, निडर यमनी, रणसिंह शीराजी बलखी, हिलबी, बाबरी, रूसी, तूसी मुसलमान योद्धा थे। इनको लेकर अकबर आया। सीसोदिये भी सुसज्जित होकर लड़ने को तैयार हो गये।

१४—चकतो = चंगेज खाँ का वंशज। चक्कवै = चक्रवर्ती राजा। पतसाहाँ पतसाह = बादशाहों का बादशाह। दुरंगा = गढों को। दिए ढाह = गिरा दिये।

भावार्थ—चंगेज खाँ के वंशधर, शाहंशाह चक्रवर्ती राजा अकबर ने अपनी चतुरंगिणी सेना से कई दुर्ग गिरा दिये।

१५—जलालदी = जलालुद्दीन। खितवा = खुतबे में। वली खुदाय = खुदा की तरफ का महापुरुष। बाजदार = करद व्यक्ति। ताजदार = बादशाह, राजा।

भावार्थ—जलालुद्दीन अकबर बादशाह वली खुदा ने कई बाजदारों (गरीबों) को ताजदार (राजा) बना दिया।

१६—जाफरान = केसर। नेपत = पैदा होती है। जठै = जहाँ पर। लीधो = लिया। सारदा = सरस्वती, पांडित्य।

भावार्थ—जहाँ केसर पैदा होती है, पग-पग पर मीठा जल मिलता है और सरस्वती विराजती है, उस काश्मीर देश को भी ले लिया।

१७—गुड़ पाखर = कवचधारी सवार, अथवा पाखरवाले घोड़े। नभ ओ वसते सीस = मस्तक को आकाश की ओर उठाये हुए, ऊँचा मस्तक किये हुए, विजयी।

दळ बळ सू घेरो दियो, प्रबळ हुमाऊँ पूत।
गैलोता चीतोड़ गढ, मिल कीधो मजबूत ॥१८॥
अमिट भडा वळ अग मे, कोठारा सामान।
सामध्रमो ठाकुर सको, दिए रग दुनियान ॥१९॥
पतो जगारो विरदपत, वीरम रो जैमाल।
केलपुरो कमधज दुहूँ, हुआ चीत गढ़ ढाल ॥२०॥
के दरवाजा कागरा, ऊभा भड अरडींग।
भला चीत मुरजाळरा, आभ लगावा सींग ॥२१॥

भावार्थ—उसके कवचधारी सवार मस्तक को ऊँचा किये हुए पूर्व मे गये और पठानों को आटे की तरह पीसकर उडा दिया।

१८—गैलोता = गहलोतों ने।

भावार्थ—उस हुमायूँ के पुत्र (अकबर) ने दलबल सहित घेरा डाल दिया तो गहलोतों ने भी चित्तौड़ को सजकर मज़-बूत बना लिया।

१९—अमिट = असीम। भडां = शूरवीरों के। कोठारा = कोठार मे। सामध्रमी = स्वामिभक्त। ठाकुर = सरदार। सको = सब कोई। दिए रंग दुनियान = ससार जिनकी प्रशंसा करता है।

भावार्थ—योद्धाओं के अंग मे असीम बल है, कोठारो मे सामान है और सब सामत स्वामिभक्त है जिनकी सब कोई प्रशंसा करते है।

२०—पतो जगा रो = जग्गा का पुत्र पत्ता। विरदपत = महा यशस्वी। केलपुरो = सीसोदिया (पत्ता)। कमधज = राठौड़। बीरम रो जैमाल = वीरमदेव का पुत्र जयमल।

भावार्थ—यशस्वी पत्ता जग्गा का पुत्र और जयमल वीरमदेव का पुत्र था। यह दोनों, सीसोदिया और राठौड़, चित्तौड के रक्षक हो गये।

२१—के = कितने ही। कांगरा = कगूरों पर। ऊभा = खड़े हुए। भड़ = भट, वीर। अरडीग = ज़बरदस्त। चित = चित्तौड़। मुरजाळ = गढ। आभ = आकाश। लगावा सींग = यश बढ़ाने को।

उठै सोर झाळां अनळ, आभ धुओ अँधियार ।
ओळां जिम गोळा पड़े, मेछा कटक मझार ॥२२॥
बुरजमाळ फण मंडळी, सोर झाळ विष झाळ ।
जाण सेस बैठो जमीं, मिस चीतोड़ कराळ ॥२३॥
के गोळां के गोळियां, के तरवारां धार ।
मरे गड़े कबरां महीं, बीबा मंसबदार ॥२४॥
ढूकै नह गढ़ ढूकड़ा, अकबर रा उमराव ।
करै वीर गढ़ रा कवच, दोय टूक इक घाव ॥२५॥

भावार्थ—कई जबरदस्त वीर दरवाजों और कंगूरों पर खड़े हुए कहते हैं कि चित्तौड़ गढ़ के यश को आकाश तक बढ़ायेंगे ।

२२—सोर = बारूद । झाळां = ज्वाला । ओळां = ओले । मेछा = मुसलमानों के ।

भावार्थ—अग्नि और बारूद की ज्वाला उठी और नभ मंडल में धुआँ छा जाने से अँधेरा हो गया; ओलों की तरह गोले मुसलमानों के कटक में गिरने लगे ।

२३—बुरजमाळ = बुर्ज की माला । फण मंडली = सर्प के फण का मंडल । जाण = मानो । मिस चीत्तौड़ = चित्तौड़ के रूप में ।

भावार्थ—बुर्जों की माला फण-मंडली है जिसमें से बारूद की ज्वालारूपी विष की ज्वाला निकल रही है, मानो भयंकर शेषनाग चित्तौड़ के रूप में पृथ्वी पर बैठा है ।

२४—बीबा मंसबदार = मुसलमान उमराव ।

भावार्थ—कितने ही गोलों से, कितने ही गोलियों से और कितने ही तलवार की धारों से मरकर, मुसलमान उमराव क़बरों में गड़ते हैं ।

२५—ढूकै = पहुँचते । ढूकड़ा = नजदीक । घाव = चोट । गढ़ रा कवच = गढ़ के रक्षक ।

भावार्थ—अकबर के उमराव गढ़ के पास तक नहीं पहुँच पाते, गढ़ के वीर रक्षक एक ही चोट में उनके दो टुकड़े कर डालते हैं ।

भड़ा लिरीजे हाजरी, नित दीजै मोराह ।
जोध फिरै गढ जावतै, पै दर पै पोहराह ॥२६॥
सूनी थाहर सिंघ री, जाय सके नहिं कोय ।
सिंह खडा थह सिंहरी, क्यों न भयंकर होय ॥२७॥
किसू सफीळा, बुरज की, काहू वजर कपाट ।
कोटा नू निधडक करे, रजपूता रा थाट ॥२८॥
अमला खोबा वाजिया, मचै भडा मनुवार ।
जागडिया दूहा दियै, सिधू राग मझार ॥२९॥
दळ अकबर तोपा दगै, सूकै नीर निवाण ।
गोळा लागे चीतगढ़, मैंगळ माछर जाण ॥३०॥

२६—भड़ाँ = वीरों की । लिरीजे = ली जाती है । मोरांह = मुहरे । जावतै = रक्षा के लिये । पै दर पै = हाजिरी लेकर उनको बारी बारी से । पोहराह = पहरे पर ।

भावार्थ—वीरों की हाजिरी लेकर उनको हमेशा मुहरे दी जाती है; वे बारी बारी से गढ़ की रक्षा के लिये पहरे पर फिरते हैं ।

२७—थाहर = गुफा । थह = माँद, गुफा ।

भावार्थ—सिंह की सूनी गुफा मे भी कोई नहीं जा सकता, तो फिर सिंह के होते हुये वह अधिक भयंकर क्यों न हो !

२८—किसूँ = क्या । सफीळाँ = (अ० सफील) शहरपनाह, प्राचीर । बजर = वज्र, मजबूत । थाट = समूह ।

भावार्थ—शहरपनाह, बुर्ज और मजबूत किवाड़ होने से क्या ? उसकी कोट को तो राजपूतों का समूह भय शून्य बनाता है अर्थात् उसकी रक्षा तो राजपूत करते हैं ।

२९—अमलाँ = अफीम । खोबा वाजियाँ = चुल्लू भर कर । जाँग-डिया = ढोली । सिंधूराग = युद्ध के समय वीरों को उत्तेजित करनेवाला एक राग विशेष ।

भावार्थ—वीरों मे चुल्लू भर भरकर अफीम की मनुहार चल रही है, और ढोली सिंधूराग मे दोहे कह रहे है ।

३०—तोपां दगै = तोपों के दगने से । सूकै = सूख जाता है । निवाण = जलाशय, कुएँ-बावलियाँ आदि । मेंगळ = हाथी । माछर = मच्छर ।

अई चीतगढ़ ओर स, तू गाजियो न जाय ।
भीतर ज्या मन भावणो, बाहर जिका बलाय ॥३१॥
अई चीतगढ़ ऊभरा, सकल गढ़ा सिरताज ।
तू जूना परणे नवी, असुरांगी अफवाज ॥३२॥
जा चितोड़ न तोड़िया, तां कीं कीधो काम ।
अकबर रै विचार ओ, जक नहीं आठ जाम ॥३३॥
अकबर रै ऊभो करै, आसिफखान अरज्ज ।
हजरत अब कांई हलो, करो जेज़ किण कज्ज ॥३४॥

भावार्थ—अकबर के दल की तोपों के चलने से जलाशयो का जल सूख जाता है, पर चित्तौड़गढ पर गोले ऐसे लगते हैं जैसे हाथी के मच्छर की चोट लगती हो ।

३१—अई = रे, हे गांजियो न जाय = तोड़ा नहीं जाता । ज्या = जो । मन भावणो = मनोहर । बलाय = आफत ।

भावार्थ—हे चित्तौड़गढ ! तू दूसरो से तोडा नहीं जा सकता, तू भीतर से मनोहर और बाहर से आफत रूप है ।

३२—ऊभरा = ऊँचा । असुरांगी = मुसलमानों की । अफवाज = सेना । जूना = पुराना, वृद्ध । परणे = विवाह करता है । नवी = नई ।

भावार्थ—हे सब किलों के सिरताज ऊँचे चित्तौड़गढ़ ! तू पुराना (वृद्ध) होते हुये भी मुसलमानों की सेनारूपी नई नारी से विवाह करता है ।

३३—जा जो । तां = तो । की = क्या । जक = आराम । जाम = पहर ।

भावार्थ—जो यदि चित्तौड़ को नही तोड़ा तो फिर काम ही क्या किया । अकबर के मन में यह विचार रहता है और आठों पहर चैन नही पड़ती ।

३४—अरज्ज = अर्ज । हलो = हल्ला, हमला । जेज़ = विलम्ब । किण कज्ज = किस लिये ।

भावार्थ—आसफ खाँ खड़ा हुआ अकबर से अर्ज़ करता है कि हजरत अब विलंब किस लिये करते हैं, हमला कर दीजिये ।

आसिफखा अकबर कहै, भीता भुरजा जोय ।।
वाको गढ भड वाकडा, हलो किया, की होय ।।३५।।
भीतरला फूटा भडा, कै खूटा सामान ।
इण गढ मे होसी अमल, खम तू आसिफखान ।।३६।।
जयमल पतै जवाब जद, हजरत तणी हजूर ।
मत्र करै लिख मेलियो, साभळ हरखै सूर ।।३७।।
गाजीजे नह चीत गढ, वींट दळा वळियाह ।
गाजीजे नह गधगज, माछ घणा मिळियाह ।।३८।।

३५—भीतां=दीवारों को । भुरजों=बुर्जों को । जोय=देखकर । भड़=वीर । बांकड़ा=बांके, विकट । की=क्या ।

भावार्थ—दीवारों और बुर्जों को देख कर अकबर आसफ खाँ से कहता है कि गढ और वीर दोनों ही वाँके हैं, आक्रमण करने से क्या होगा ?

३६—भीतरला=भीतर के । फूटां भड़ां=वीरों मे फूट पड़ने से । कै=या । खूटां=चुक जाने से । खम=धीरज धारण कर । अमल=अधिकार ।

भावार्थ—भीतर के वीरों में फूट पड़ने से या खाद्य-सामग्री के चुक जाने से इस गढ़ पर हमारा अधिकार होगा । हे आसफखॉ ! तू धीरज धारण कर ।

३७—जद=जब, उस समय । मंत्र करै=मत्रणा कर के । सांभळ=सुन कर ।

भावार्थ—उस समय जयमल और पत्ता ने सलाह कर के बादशाह को कुछ जवाब लिख भेजा जिसको सुन कर वीर बहुत हर्षित हुए ।

३८—गांजीजे नह=तोड़ा नहीं जायगा । वींट=घेरा । दळां=फौजों के । वळियाह=लगने से । गंधगज=मस्त हाथी । माछ=मच्छर, म्लेच्छ । घणां=बहुत । मिलियाह=मिलने से ।

भावार्थ—यह चित्तौडगढ सेना के घेरा लगने से नहीं तोड़ा जा सकेगा, जिस तरह बहुत से मच्छर मिल कर मस्त हाथी को नहीं परास्त कर सकते ।

इन्द्रानुज रो डंड जो, आवै हरता आंच ।
उणरी नीसरणी हुए, इण गढ लागै सांच ॥३९॥
काचा भड़ा कसूर पिण, किला कसूर न तार।
प्राण बचावण पिसणनूं, सूंपै ग्रहै न सार ॥४०॥
कैवी नूं गढ कूंचियां, सूंपै छोड़ सरम्म ।
मुख ज्यांरा दीठां मिटै, धर राजपूत धरम्म ॥४१॥
भेळायां भुरजाळ ज्यां, पाणे ची गम पेठ ।
जिके कहांणा खोय जस, वसुधा मंडळ बैठ ॥४२॥

३९—इन्द्रानुज = इन्द्र का भाई (वामनावतार)। हरता = दूर करते हुए। आँच = आग।

भावार्थ—इन्द्रानुज (विष्णु) का दंड यदि आग को हटाता हुआ आवे और उसकी निसेनी बनाई जय तो वह इस गढ़ पर ठीक लग सकती है।

४०—पिण = परन्तु। किला = किलों का। तार = लेश मात्र। बचावण = बचाने को। पिसण नूं = शत्रु को। सूंपै = सौंपते हैं। सार = तलवार।

भावार्थ—गढ़ का दोष नहीं, कच्चे शूरवीरों का दोष है जो अपने प्राणों को बचाने के लिये उसे शत्रुओं को सौंप देते हैं और हाथ मे तलवार नहीं पकड़ते।

४१—कैवी नूं = शत्रु को। कुंचिया = कुंजियाँ। सरम्म = शर्म्म। दीठां = देखने से। धर = धरा, पृथ्वी।

भावार्थ—जो लज्जा छोड़ कर गढ की कुंजियाँ शत्रु को सौंप देते हैं, उनका मुख देखने ही से राजपूतों के धर्म का नाश होता है।

४२—भेळायां = दिलवा दिया, खो दिया। ज्यां = जिन्होंने। पांणे ची = बल की। गमे पैठ = पैठ उडाकर। जिके = वे। कहांणा = कहलाए। बैठ = बेगारी, स्वामीद्रोही।

भावार्थ—बल (रजपूती) की प्रतिष्ठा को खोकर जिन्होंने गढ़ को संकट मे डलवा दिया, वे अपने यश को खोकर पृथ्वी पर स्वामिद्रोही कहलाये।

जुध भागा थाभै जिको, गढ़ तजिया नहिं गत्त ।
गढ नूं म्हे बाथ्यो गळै, आवो सौ असपत्त ॥४३॥
रतन दिली सू आणियो, सूरा है समरत्थ ।
ग्रहियो म्हें चीतोड़ गढ, किसू अछेरा कत्थ ॥४४॥
समर तजण सू सौगुणो, दुरग तजण रो दोष ।
मरद दुरंग जाता मरै, मिलै जिका नू मोष ॥४५॥
बारा सुखनां खीजियो, अकबर साह जलाल ।
उच्चरियो हूँ जीवता, सिंहा पाड़ू खाल ॥४६॥
पग माडो जैमल पता, हूँ अकबर जगजीत ।
चित्रकोट में जाणियो, चित्रकोट मझ चीत ॥४७॥

४३—जिको = जो । थांभै = आश्रय देता है, थामता है । गत्त = गति । म्हें = हमने । असपत्त = बादशाह, अकबर ।

भावार्थ—जो (गढ़) युद्ध से भागे हुए वीरों को आश्रय प्रदान करता है, उस गढ़ को छोड़ने मे भलाई नहीं है । (अतः) सौ बादशाह आ जायँ, हमने गढ को गले से लगा लिया है ।

४४—रतन = रावल रत्नसिंह, पद्मिनी के पति । आणियो = लाये । किसूं = क्या । अछेरा = आश्चर्य्य । कत्थ = बात, कथा ।

भावार्थ—कोई समर्थ वीर तो रत्नसिंह को दिल्ली से छुडा कर लाये थे, हमने यदि चित्तौडगढ को (दूसरों के हाथों मे जाने से) रोका तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ?

४५—जिका नू = उनको । मोष = मोक्ष ।

भावार्थ—युद्ध छोडने वाले की अपेक्षा दुर्ग छोडनेवाले को सौगुना पाप अधिक लगता है । जो मनुष्य जाते हुए दुर्ग के लिये मरते है उनको मोक्ष मिलता है ।

४६—बारा सुखना = बारह ही बातों से, निश्चय रूप से । खीजियो = चिढ़ गया । हूँ = मैं ।

भावार्थ—जलालुद्दीन अकबर शाह बहुत खीज कर कहने लगा कि मैं जीवित सिंहों की खाल खींचनेवाला हूँ ।

४७—पग मा डो = ठहरे रहो । चित्रकोट मझ चीत = चित्तौड़ मे ही मेरा मन है ।

पग मांडो जैमल पता, गढ़ मोसूं नहिं दूर ।
लीधा इसा हजार गढ़, मो दादे तहमूर ॥४८॥
कर सूं ऐ न दियै किलो, ऊभा पगां अभंग ।
किलो लियां विण हूं कठै, सरकूं लसकर संग ॥४९॥
बाबर नूं जीत्यो नहीं, सांगो साहां साल ।
उणरे घर रा ऊमरा, मो आगे की माल ॥५०॥
लीधो इण गढ़ नूं लड़ै, सग बहादर साह ।
धकै हुमाऊँ साहरै, रण तज लागो राह ॥५१॥

भावार्थ—हे जयमल और पत्ता! मैं संसार विजय अकबर हूँ। मैंने चित्तौड़ को अपने मन में चित्रांकित कोट के समान समझ रखा है।

४८—तहमूर = तैमूरलंग।

भावार्थ—हे जयमल और पत्ता! खड़े रहो। गढ़ मुझसे दूर नहीं है। मेरे दादा तैमूर ने ऐसे हजारों गढ़ ले लिये थे।

४९—ऐ = ये। अभंग = अजेय। विण = बिना। कठै = कहाँ, कब। सरकूं = हटता हूँ। लसकर = सेना। ऊभा पगां = खड़े दम, जीते जी।

भावार्थ—ये अजेय वीर जीते जी अपने हाथ से किले को न देंगे। लेकिन किले को लिये बिना मैं भी अपनी सेना को हटाकर ले जानेवाला कहाँ हूँ।

५०—साहाँ साल = बादशाहों का काँटा। उणरे = उसके। घररा = घर के। मो = मेरे। की = क्या।

भावार्थ—बादशाहों का शल्य राणा संग्रामसिंह जब बाबर को नहीं जीत सका तो उसके घर के उमराव मेरे आगे क्या चीज़ हैं।

५१—लीधो = लिया। लडै = लडकर। धकै = मुकाबले में। हुमाऊँ साहरै = हुमायूं बादशाह के।

भावार्थ—बहादुरशाह ने लडकर इस गढ़ को जीता था। पर हुमायूँ बादशाह के सामने वह भी रण छोड़कर भाग निकला।

लागे मो इकबाल सू, नीसरणी गयणांग ।
इण गट क्यू नहिं लागसी, खिंविया मोकर-खाग ॥५२॥
चद्रावत तज सामध्रम, विणही पड़िया ताव ।
दुरगो भागो दुरगसू, रामपुरा रो राव ॥५३॥
प्रगट कहै जैमल-पतो, अचळ अचळ कर अग ।
कायर रेहण कढ गया, दीपै कनक दुरग ॥५४॥
तो में वीस हजार भड़, ग्यो दुरगो इक दूर ।
ताव पड़ै तोनूं किसू, पड़िया इक कंगूर ॥५५॥
असकंदर जो आवही, सुलेमान दळ साज ।
तोपी नह सूपा तुनै, अकबर काहू आज ॥५६॥

५२—मो=मेरे । इकबाल=प्रताप, भाग्य, ऐश्वर्य्य । गयणांग= आकाश मे, स्वर्ग के । खिंविया=चमकने से । मो कर खाग=मेरे हाथ मे तलवार ।

भावार्थ—मेरे प्रताप से स्वर्ग के भी निसेनी लग जाती है तो फिर मेरे हाथ मे तलवार के चमकने से इस गढ़ के क्यो नहीं लगेगी ।

५३—चंद्रावत=रामपुरे का चंद्रावत राव दुर्गा । यह पहले मेवाड़ के महाराणा का विश्वास पात्र सेवक था । पर बाद मे जाकर अकबर से मिल गया और बडा मसबदार बन गया । ताव =ताप, तकलीफ ।

भावार्थ—रामपुरे का राव दुर्गादास बिना ताव पहुँचे ही स्वामि-धर्म को छोड़ कर दुर्ग से भाग गया ।

५४—अचळ=पर्वत । अचळ=निश्चल, अटल । कढ़ गया= निकल गये । दीपै=प्रकाशित होता है । रेहण=सोने का मैल ।

भावार्थ—प्रकट में जयमल और पत्ता कहते है कि (हे दुर्ग !) तू अटल हो कर रह । कायररूपी मैल के निकल जाने से स्वर्ण-दुर्ग की ज्योति बढ़ गई है ।

५५—भावार्थ—तेरे साथ वीस हजार वीर हैं । एक दुर्गादास चला गया तो क्या हुआ । एक कगूरे के गिर जाने के तेरे पर क्या आपत्ति आ सकती है ?

५६—तोपीं=तो भी । असकदर=सिकदर । तहं सूपा तुनै=तुझे नही छोड़ेगे । काहू=क्या ।

खत्रियां रा खटतीस कुळ, त्रदस क्रोड़ तेतीस।
जिके खड़ा तो जावतें, अकबर किसूं करीस ॥५७॥
दिल्ली गयो अलावदी, कैदी करे रतन्न।
रजपूतां ही राखियो, जदतो करे जतन्न ॥५८॥
भीलन कूं न, भळावियो, नहिं मेर, मीणाह।
तो नूं राण भळावियो, सोहड़ां सुकळणियाह ॥५९॥
पण लावो जमल पत्त, मरसां बांधे मोड़।
सिर साजे सूंपा नहीं, चकता नूं चीतोड़ ॥६०॥

भावार्थ—यदि सिकंदर और सुलेमान भी सेना इकट्ठी कर के आ जायें तो भी हम तुझे नहीं देंगे। अकबर आज क्या चीज है?

५७—खत्रियां रा = क्षत्रियों के। खटतीस कुल = छतीस वंश। त्रदस = देवता। तो जावतं = तेरी रक्षा के लिये।

भावार्थ क्षत्रियों के छत्तीस वंश और तैतीस करोड़ देवता जब तेरी रक्षा के लिये खड़े हैं तब अकबर क्या कर लेगा?

५८—अलावदी = अलाउद्दीन। रतन्न = रावळ रत्नसिंह। जदतो = जब भी।

भावार्थ—रत्नसिंह को कैद करके जब अलाउद्दीन उसे दिल्ली ले गया तब भी राजपूतों ही ने तुझे रखा था।

५९—भळावियो = सौंपा है। सोहड़ां = सुभटों को। सुकळणियाह = अच्छे लक्षण अथवा कुलवाले।

भावार्थ—राणा (उदयसिंह) ने तुझे भील, मेर और मीणों की रक्षा में नहीं बल्कि अच्छे कुलवाले वीरों के हाथों में सौंपा है।

६०—पण = प्रण। मरसां = मरेंगे। मोड़ = सेहरा। सिर साजे = सिर के रहते हुए। चकता नूं = मुसलमानों को।

भावार्थ—जयमल और पत्ता ने सिर पर सेहरा बाँध कर अर्थात् सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर और मरने की प्रतिज्ञा कर कहा कि जीते जी चित्तौड़ को मुसलमानों को नहीं सौंपेंगे।

पतो माल गढ़ पुरुषरा, वणिया भुज वरियाम।
दातूसळ गढ़ दुरदरा, नेक उबारण नाम ॥६१॥
मारू परधर मारका, ठहरे समहर ठौड़।
ऊखाणों उजवाळियो, चढ़ जयमल चीतोड ॥६२॥
पाधर अकबर सू पतो, बिढ़े इसो वरियाम।
सो गाजै चीतोड़ सिर, की इचरज रो काम ॥६३॥
ओ पातल सीसोदिया, ओ जयमल कमधज्ज,।
(एक सूर घर कज्ज है, एक सूर पर कज्ज) ॥६४॥
तोड़ जोड़ ततबीर में, कसर न राखे काय।
आप अक्कबर ओलियो, गढ वो लियो न जाय ॥६५॥

६१—माल = जयमल। गढ़ पुरुषरा = गढरूपी पुरुष के। वरियाम = उत्तम। दाँतूसळ = दाँत। दुरद = हाथी।

भावार्थ—पत्ता और जयमल गढरूपी पुरुष के दो उत्तम भुजदंड बन गये और गढरूपी हाथी के दोनों दाँत बचाकर यश रखने के लिये तैयार हो गये।

६२—मारू = मारवाड़ी। परधर = पराई धरती। मारका = मारने-वाला। उजवाळियो = उज्ज्वल कर दिया। समहर = समर, युद्ध। ठौड़ = स्थान। ऊखाणो = कहावत।

भावार्थ—मारवाड़ी पराई धरती मे मारनेवाले हैं और युद्ध मे भाग लेते हैं, यह कहावत जयमल ने चित्तौड के लिये बलि होकर प्रत्यक्ष कर दी।

६३—पाधर = सीधा। बिढे = लड़े। इचरज = आश्चर्य।

भावार्थ—सीधा अकबर से जाकर भिड़नेवाला श्रेष्ठ वीर पत्ता यदि चित्तौड में गर्जना करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

६४—ओ = यह। पातल = पत्ता। कमधज्ज = राठौड़। घर कज्ज = घर के काम। परकज्ज = पराए के काम।

भावार्थ—पत्ता सीसोदिया और जयमल राठौड़ है। एक तो अपने घर (मातृभूमि) के लिये और दूसरा पराये (स्वामी) के लिये लडता है।

६५—ततबीर = तद्बीर, उपाय। ओलियो = सिद्ध।

॥ बड़ा दोहा ॥

रोपी अकबर गाड़, कोट झड़े नह कांगरे ।
पटके हाथळ सींह पण, बादळ व्है नह बिगाड़ ॥६६॥
राणा रा धिन रावता, गाढ़ा आदर गाढ़ ।
पायो अकबर पानड़े, चीतौड़ जळ चाढ़ ॥६७॥
कोट विणायो मोरिया, साह हमाऊँ नंद ।
तोड़ करे नहिं टूटही, वीर मदत जग वंद ॥६८॥
[illegible] होता रछपाळ जग, या सुहडां रा थाट ।
पाखां गिरां गिरवाणपत, किण विध सकतो काट ॥६९॥

भावार्थ—अकबर खुद सिद्ध है जोड़-तोड़ तथा तदबीर में भी कुछ कसर नहीं रखता। फिर भी गढ़ उसके हाथ नहीं आता।

६६—रोपी = ठानी। गाड़ = लड़ाई। हाथळ = पंजा। पण = परन्तु। हे = होते हैं। बिगाड़ = नुक़सान।

भावार्थ—अकबर ने लड़ाई ठान ली पर कोट या कंगूरा नहीं टूटा। सिंह पंजा मारता है, लेकिन बादलों का कुछ नहीं बिगड़ता।

६७—धिन = धन्य। आदर गाढ = बहुत आदर है। रावतां = उमराव। पानड़े = पत्ते में।

भावार्थ—राणा के उमरावों को धन्य है जिनका गढ़ के प्रति पूर्ण आदर है। उन्होंने चित्तौड़ को जल चढ़ाकर अकबर को पत्ते में पिलाया (खूब छकाया)।

६८—कोट—गढ। विणायो = बनाया। मोरिया = मौर्य्य वंशियों ने। साह हुमाऊँ नंद = अकबर। मदत = सहायता, मदद।

भावार्थ—मौर्य्य वंशियों ने इस गढ को बनवाया। हुमायू का पुत्र अकबर दाँव-पेच करता है, परन्तु टूटता नहीं; क्योंकि जगत प्रसिद्ध वीर उसकी मदद पर है।

६९—रछपाल = रक्षा करनेवाले। सुहडा = सुभटों के। थाट = ठट्ट, समूह। पाख गिरां = पर्वतों के पंख। गिरवाणपत = इंद्र। किण विध = किस प्रकार।

गुण भूषण भुरजालरो, जस मै दुत जागंत ।
बांकीदास बणावियो, बाचे नर बुधवंत ॥७०॥

(भुरजाल भूषण)

—:०:—

भावार्थ—यदि इन जैसे वीरों के समूह संसार की रक्षा करने वाले होते तो इन्द्र पहाड़ों के पर कैसे काट सकता था ।

७०—भुरजाल रो = गढ़ की । दुत = कांति । जस = यश । बुधवंत = बुद्धिमान ।

भावार्थ—गुणों से विभूषित गढ़ की यशमयी कांति से प्रकाशमान इस 'भुरजाल भूषण' को बांकीदास ने बनाया: बुद्धिमान मनुष्य इसे पढ़ेंगे ।

कविराजा सूर्य्यमल्ल

कवि-कुलाभरण महाकवि सूर्य्यमल का जन्म चारणों की मिश्रण शाखा के एक प्रतिष्ठित कुल में स० १८७२ मे बूँदी में हुआ था। इनके पिता का नाम चंडीदान और पितामह का बदनसिंह था। ये दोनों बूँदी दरबार के प्रधान कवियो में से थे। सूर्य्यमल ने छह विवाह किये थे पर इनके कोई संतान नही हुई जिससे इन्होंने मुरारिदान जी को अपनी गोद ले लिया था। अपने पिता एव स्त्रियो के विषय मे सूर्य्यमल ने स्वय ही वंशभास्कर में लिखा है :—

> बदन सुकवि सुत कवि मुकुट, अमर गिरा मतिमान।
> पिंगल डिंगल पटु भये, धुरंधर चडीदान॥
> दोला सुरजा विजयका, जसारु पुष्पा नाम।
> पुनि गोविन्दा पट्प्रिया, अर्कमल्ल कवि वाम॥

सूर्य्यमल बडे विलासी, मद्यप, तुनुकमिजाज एवं स्वतंत्र प्रकृति के पुरुष थे और अपने व्यवहार मे इतने रूखे थे कि लोग इनके पास जाना भी पसंद नहीं करते थे। ये दिन रात शराब के नशे में चूर रहते थे और इस बात की कल्पना भी नही कर सकते थे कि बिना मदिरा-पान के भी कोई मनुष्य ठीक तरह से अपना काम कर सकता है। प्रवाद है कि जिस समय इनकी एक स्त्री का देहान्त हुआ उस समय भी ये शराब पीकर उसकी दाह-क्रिया के लिए घर से बाहर निकले थे। सूर्य्यमल का जीवन ही शराब पर निर्भर था। पर फिर भी नशे मे ये इतने उन्मत्त नही हो जाते थे कि शरीर की सुधबुध ही न रहे। इतना ही नहीं, नशे की हालत में इनकी कल्पनाशक्ति और भी सजग हो उठती थी और दो आदमी जो इनके दाहिनी तथा बाई तरफ बैठे रहते बडी कठिनता से इनकी उस समय की कविताओं को लिख पाते थे। सहृदय कवि होने के अतिरिक्त सूर्य्यमल उच्चकोटि के विद्वान भी थे और संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पिंगल, डिंगल आदि कई भाषाएँ जानते थे। इनके पुत्र

मुरारिदान ने अपने रचे डिंगल कोष के प्रारम्भ में इनकी विद्वत्ता एव ज्ञान गरिमा की बडी प्रशंसा की है :—

देखो चंडीदानरा, सुतरो सुजम सुजाण।
दोहा सुरमाहे दुरस, वदियो अवै बखाण॥

चउदह विद्या चातुरी, चोसठ कला चवात।
मिमासा माम्मट वळे, पातंजल हि पढात॥

न्याय उदधि खेवट निरख, वैयाकरण बिसेस।
पालकाप्य नाकुल प्रभण, साकुन सास्त्र असेस॥

इनका देहान्त वि० स० १९२० में बूँदी में हुआ।

सूर्य्यमल ने वंशभास्कर, बलवत विलास, छदो मयूख और वीर सप्तशती ये चार ग्रंथ बनाये। इनके सिवा इनके लिखे फुटकर कवित्त-सवैये भी बहुत से मिलते हैं। ग्रन्थों में वंशभास्कार इनकी सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रिय रचना है। बूँदी-नरेश महाराव राजा रामसिंह जी (स० १८७८-१९४५) की आज्ञा से इन्होंने वि० स० १८९७ में इस ग्रन्थ को लिखा था। इसमें प्रधानतः बूँदी राज्य का इतिहास वर्णित है, पर प्रसगवश राजस्थान की दूसरी रियासतों का इतिहास भी थोड़ा बहुत आ गया है। कवि कृष्णसिंह जी बारहठ ने इसकी टीका की है और टीका सहित ४३९८ पृष्ठों मे समस्त ग्र थ छपकर तैयार हुआ है। वशभास्कर की भाषा के सम्बन्ध में थोड़ा सा मतभेद है। कुछ लोग इसकी भाषा को डिंगल और कुछ पिंगल बतलाते हैं। परन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो वशभास्कर की भाषा न तो शुद्ध डिंगल है, न शुद्ध पिंगल। वह चारणों की खिचडी भाषा है जिसमें सस्कृत, प्राकृत, पैशाची, अपभ्रश, व्रजभाषा आदि कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है और क्रियापद, संयोजक-शब्द, कारक चिह्नादि भी डिंगल और पिंगल दोनो के मिलते हैं।

वशभास्कर की भाषा कठिन भी बहुत है। सूर्य्यमल ने कहीं कहीं तो अपने निज के गढ़े हुए शब्द रख दिये हैं और कहीं कहीं ऐसे अप्रचलित एवं क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है कि किसी साधारण योग्यता वाले पाठक का वशभास्कर को समझना तो दूर रहा उसे हाथ में लेने का साहस भी कम होता है। इनकी क्लिष्ट भाषा का थोड़ा सा नमूना देखिये :—

कट्टिल[1] कर्णिकावली, भटा हृदावली[2] भये,
अरिष्ट[3] के अपाट[4] वृन्द, कलोम[5] कन्द उन्नये ॥
बने अरी पलास[6] कान अन्दु[7] नाग वल्लरी,
कलेज पीलुपर्णिका[8] कसेर तोर टक्करी ॥

चारण कवियों का तथा वंशभास्कर के इतर प्रशंसकों का कहना है कि सूर्य्यमल जैसा प्रतिभावान कवि न तो हुआ है न होगा। वंशभास्कर के साथ ही वे सच्ची कविता की इति श्री समझते हैं। चारण लोगों का यह मत कुछ लोगों को अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत हुआ होगा और कुछ अंशों में वह अत्युक्तिपूर्ण है भी। परन्तु इतना तो फिर भी कहना पडेगा कि वीर रस का जैसा भावानुरंजित और ओजपूर्ण वर्णन सूर्य्यमल ने किया है वैसा हिन्दी के तो किसी दूसरे कवि की रचना में देखने को अभी तक नहीं मिला। उदाहरण-स्वरूप भूषण ही को लीजिये। ये वीररस के सर्वोच्च कवि माने जाते हैं। भूषण राष्ट्रीय कवि हैं, इसमें कोई सदेह नहीं। ये हिन्दू धर्म के उपासक हैं, इसमें कोई मत-भेद नहीं। उनकी कविता में औरङ्गजेब के अत्याचारों से प्रताडित हिन्दू जाति के हाहाकार की प्रति-ध्वनि है, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। परन्तु इतना होते हुए भी कहाँ सूर्य्यमल और कहाँ भूषण! दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। वीर-वीराङ्गनाओं के हृदयस्थ भावों का विश्लेषण और काव्यमय निरुपण भूषण की कविता में कहाँ, जिसके दर्शन सूर्य्यमल की रचना में पग पग पर होते हैं।

---

१ सूँड़ के अग्र भागों की पंक्ति ही करेलों की पंक्ति है।

२ हृदयों की पंक्ति बैंगन है।

३ लहसुन के समान।

४ अंकुश का अग्रभाग।

५ तिल्ल ही जमीकंद हैं।

६ हाथियों के कान अरवी के पत्ते है।

७ जंजीर नागरबेले हैं।

८ कलेजे ही दाख की बेलें हैं और हाथी की पीठ की लंबी हड्डी तोरई है।

किसी राजपूत महिला का पति शत्रुओं से लड़ने के लिये रणभूमि में गया हुआ है। वह उसी की चिंता में मग्न है, पर यह नहीं चाहती कि उसका पति भागकर घर आ जाय। जिससे सती होने की उसकी लालसा पर पानी फिर जाय और संसार के सामने उसे लज्जित होना पड़े। इतने में उसे सूचना मिलती है कि उसका पति रणक्षेत्र की तरफ से भागा हुआ घर की ओर आ रहा है। अब उसके दुःख का क्या ठिकाना! इतने में पति भी आ पहुँचता है। कायर पति को अपनी आँखों के सामने खड़ा देख एक लंबी साँस खींचकर वह कहती है :—

की घर आवे थे कियौ, हणियाँ वळती हाय।
धण थारे घण नेहड़ै, लीधो बेग बुलाय ॥१॥

पूता रे बेटा थिया, घर में बधियो जाळ।
अब तो छोड़ो भागणों, कंत लुभायो काळ ॥२॥

यव जीवे भव खोवियो, मो मन मरियो आज।
मौनूँ ओछे कँचुवै, हाथ दिखाताँ लाज ॥३॥

यो गहणों यो बेस अब कीजै धारण कंत।
हूँ जोगण किण कामरी, चूड़ा खरच मिटंत ॥४॥

कंत सुपेती देखता, अब की जीवण आस।
मो थण रहणौ हाथ हूँ, धाते मुँहडे घास ॥५॥[1]

---

१ अर्थ—हाय, घर आकर तुमने क्या किया? यदि मारे जाते तो मैं भी तुम्हारे साथ सती होती। इस पर पति उत्तर देता है—प्रिये, तेरा प्रेमाधिक्य ही तो मुझे शीघ्र बुला लाया ॥१॥

पुत्रों के भी पुत्र होकर अब घर में बहुत जाल बढ़ गया है और काल तुम्हारी अवस्था पर लुभा रहा है। कंत! अब तो युद्ध से भागना छोड़ दो ॥२॥

हे प्रीतम! इस प्रकार से जीकर तो तुमने सचमुच जन्म खो दिया। तुम्हारी यह दशा देखकर आज मेरा तो मन ही मर गया। अब तो इस (सौभाग्य चिन्ह) ओछी कँचुकी में हाथ दिखाते हुए भी मुझे लज्जा मालूम होती है ॥३॥

कंत! यह मेरा वेश और ये मेरे आभूषण अब आप ही धारण कीजिये। मैं तो योगिनी हो चली। अब आपके किस

विश्व के उन समस्त कवियों में जिनकी रचना में युद्ध-वर्णन मिलता है, पाश्चात्य विद्वान महाकवि होमर का स्थान सब से ऊँचा मानते हैं। और तो और, होमर की तुलना में व्यास और वाल्मीकि के युद्ध-वृत्तान्तों को भी उन्होंने अस्वाभाविक, अतिशयोक्तिपूर्ण एवं आवश्यकता से अधिक अलंकारों से लदे हुए बतलाया है। यह अपना अपना मत है और इस संबंध में यहाँ कुछ कहना अप्रासंगिक होगा। पर होमर के युद्ध वृत्तान्तों की यह विशेषता है कि उन्हें पढ़ते समय पाठक यह नहीं महसूस करता कि वह किसी पुस्तक में युद्ध का वर्णन पढ़ रहा है, बल्कि ग्रीस और ट्राय की धावा मारती हुई सेनाओं की पद-ध्वनि, सैनिकों की खूंख्वार हुंकार आदि स्पष्ट रूप से कानों से सुनता और रणक्षेत्र के रोमांचकारी दृश्यों को अपनी आँखों से देखता है। यही गुण हम सूर्य्यमल की रचना में भी पाते हैं। वंशभास्कर में कई स्थानों पर युद्ध का वर्णन है और शायद इसीलिये वह एक काव्यग्रन्थ माना भी जाता है, नहीं तो उसके अधिक भाग का संबंध काव्य की अपेक्षा इतिहास से अधिक है। जिस समय सूर्य्यमल युद्ध का वर्णन करना प्रारंभ करते हैं, वे किसी भी बात को अधूरी नहीं छोड़ते, युद्ध सम्बन्धी किसी भी विषय को अल्पता से नहीं देखते। सेनाओं की मुठभेड़, वीरों का जयनाद, कायरों की भगदड़, घायल वीरों का करुण-क्रन्दन इत्यादि के सिवा जिस समय योद्धा वार करता है उसकी तलवार कैसी दीख पड़ती है, रक्त की सरिता किस प्रकार खल खल शब्द करती हुई समर-स्थली में प्रवाहित होती है और मांस के लोभ से लाशों पर बैठे हुए गीध दूर से कैसे दीख पड़ते हैं आदि बातों का नाना प्रकार की उपमा-उत्प्रेक्षाओं द्वारा वे ऐसा सुन्दर, ऐसा स्पष्ट और ऐसा सबल मजमून बाँधते हैं कि पढ़ते ही हृदय सहसा हिल जाता है।

नीचे सूर्य्यमल की कविता के थोड़े से नमूने दिये जाते हैं :—

काम की। अच्छा ही हुआ आपको भी चूड़ियों का खर्च मिटा ॥४॥

हे कंत! बालों की सफेदी को देखते हुए अब और कितने दिन जीने की आशा है। मुझे आश्चर्य होता है कि मेरे स्तनों पर रहनेवाले इन हाथों से कैसे तुम शत्रु के आगे मुँह में तिनका लेते हो ॥५॥

दोहे

दमॅगळ विण अपचौ दियण, बीर धणी रो धान।
जीवण धण वाल्हा जिका, छोडौ जहर समान ॥१॥
नहॅ डाकी अरि खावणौ, आया केवळ वार।
वधाबधी निज खावणौ, सो डाकी सरदार ॥२॥
सहणी सबरी हूॅ सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणे पूत सम, वलय लजाणे नाह ॥३॥
जे खळ भग्गा तो सखी, मोताहळ सज थाळ।
निज भग्गा तो, नाहरी, साथ न रखो टाळ ॥४॥

१—दमॅगळ = युद्ध। विण = बिना। धान = अन्न। धण = स्त्री। वाल्हा = प्रिय। जिका = जिनको।

भावार्थ—(हे मित्रो!) वीर स्वामी का अन्न बिना युद्ध के नही हजम होता। अत: जिनको जीवन और स्त्री प्रिय हों, वे उस अन्न को जहर समझ कर छोड़ दे।

२—डाकी = जबरदस्त। वार = अवसर। वधाबधी = बदाबदी; होड़ लगा कर।

भावार्थ—जबरदस्त सेनापति वह नहीं है जो केवल अवसर आने पर शत्रु का सहार करता है, लेकिन प्रतापी नेता वह है जिनके लिये अपने ही लोग होड़ लगा कर प्राणोत्सर्ग करते हैं।

३—सहणी = सखी। वलय = चूड़ा, चूड़ियाँ। नाह = नाथ, पति।

भावार्थ—हे सखी! और सब बातें मुझे सह्य हो सकती हैं, किंतु यदि प्राणनाथ मेरे वलय को लजा दें और पुत्र मेरे दूध को तो ये दोनों बातें मेरे लिये समानरूप से दाहकारी एवं हृदय को उलटनेवाली हैं।

४—खळ = शत्रु। मोताहळ = मोती। थाळ = थाल, थाली।

भावार्थ—हे सखी! यदि शत्रु भाग गये हो तो मोतियों से थाल सजा ला (जिससे प्राणनाथ की आरती उतारूँ) और यदि अपने ही लोग भाग चले हों तो प्राणनाथ का साथ मत बिछुड़ने दे। (अर्थात् सती होने की सामग्री प्रस्तुत कर।)

हथळेवे री मूठ रिण, हाथ विळग्गा माय ।
लाखां वातां हेकलो, चूड़ो मो न लजाय ॥५॥
समळी ऑंग निसंक भख, जम्बुक राह म जाह ।
पण धण रो किम पेख सी, नयण विणट्ठा नाह ॥६॥
कांय कलाळी छळ कियो, सेज गुमावण रंग ।
फूल दुबारै छाकियाँ, चींते चोगुण जंग ॥७॥
कर पुचकारै धण कहै, जाण धणी री जैत ।
नीरा आण आगाविया, हूँ बळिहारी कुमैत ॥८॥

५—विळग्गा = लगने से, चुभने से । माय = मेरे । हेकलो = अकेला ।

भावार्थ—पाणिग्रहण के अवसर पर उनकी हथेली पर के तलवार की मूठ के निशान मेरे हाथ मे चुभने से हे माता! मैं समझ गई कि युद्ध मे अकेले हो जाने पर भी वे मेरे चूड़े को नहीं लजावेंगे ।

६—समळी = चील । जम्बुक = गीदड़ । म = मत । जाह = जा । पण = प्रण । धण = पत्नी । विणट्ठा = विना ।

भावार्थ—हे चील! दूसरे अंगो को तो तू भले ही निडर होकर खा, परन्तु शृगाल के मार्ग का अनुकरण मत कर (आंखें मत निकाल) । क्योंकि यदि तू प्राणनाथ को नेत्र-विहीन कर देगी तो वे अपनी पत्नी के सती होने के प्रण-पालन को कैसे देखेंगे ।

७—कलाळी = कलालिन । गुमावण = खोनेवाला, खराब करने वाला । रंग = मजा । दुबारै = बढ़िया शराब । चींतै = याद करता है ।

भावार्थ—हे कलालिन! तू ने यह क्या कपट किया कि रति-शय्या का मजा ही विगाड दिया । वे तो तेरे बढ़िया शराब से मस्त होकर भी युद्ध का ही चौगुना स्मरण करते हैं ।

८—जैत = जीत । कुमैत = (तु० कुमेत) घोड़े का एक रंग जो स्याही लिये लाल होता है । यहाँ इस रंग के घोड़े से तात्पर्य्य है । धणी = पति ।

भूल न दीजै ठाकुरा, पावक माथे पाव।
राख रहीजै दाझियाँ, तिया धरीजै चाव ॥९॥
नींदाणौ गिण टेकलौ, पुळौ न छेडौ पीव।
जाय पुजावौ पाव ही, चूड़ौ धण चिरजीव ॥१०॥
असिधावण तो पीव पर, वारी वार अनेक।
रण झाटकता कंत रे, लगै न झाटक एक ॥११॥

भावार्थ—अपने पति की विजय हुई सुनकर पत्नी पति के घोड़े की आरती उतार कर और उसे अपने हाथ से थपथपा कर कहती है कि हे कुम्मैत! तुझ पर बलिहारी हूँ।

९—पाव = पाँव, पैर। दाझियाँ = दाझने से, छूने से। चाव = उमंग।

भावार्थ—(सती की उक्ति है) हे सरदारो! आप भूलकर भी आग पर पैर मत रख देना। इसके छू जाने से तो फिर राख ही बचती है और इसका आलिंगन करने के लिये स्त्रियाँ ही लालायित रहती हैं।

१०—नींदाणौ = निद्राग्रस्त। गिण = समझ कर। टेकलौ = हठी। पुळौ = भाग जाओ।

भावार्थ—तुम लोग यह समझ कर कि मेरे हठी पति निद्रावश हैं, भाग जाओ। उन्हे मत छेड़ो। तुम्हारे चले जाने से तुम्हारी स्त्रियों का चूड़ा (सुहाग) चिरजीवी होकर सम्मान प्राप्त करेगा।

विशेष—राजस्थान मे सधवा स्त्रियाँ अपने दोनों हाथों मे हाथी दाँत आदि की बनी हुई चूड़ियाँ पहनती हैं। दोनों हाथों की चूड़ियों के सेट को चूडा कहते हैं। यह चूडा स्त्रियों के सौभाग्य का चिह्न है और सधवापन का प्रतीक माना जाता है।

११—असिधावण = सिकलीगरनी। झाटकतां = वार करते हुए, प्रहार करते हुए। झाटक = झटका।

भावार्थ—हे सिकलीगरनी! मै तेरे पति पर अनेक बार न्योछावर हूँ कि उसने तलवार की धार इतनी तेज कर दी

साथण ढोल सुहावणों, देणा मो सह दाह ।
उरसा खेती बीज धर, रजवट उलटी राह ॥१२॥
नीनड़क सूतो केहरी, तो भी विमुहा पाव ।
गज गैडा धीर न धरै, वज्र पडै वघवाव ॥१३॥
आज घरै सासू कहै, हरख अचाणक काय ।
वहू वळेवा हूलसै, पूत मरेवा जाय ॥१४॥
देख सहेली मो धणी, अजको वाग उठाय ।
मद प्याला जिम सकलो, फौजा पीवत जाय ॥१५॥

कि जिससे युद्धमें प्रहार करने वक्त मेरे पति को एक भी झटका नहीं लगा।

१२—साथण = साथिन, सखी। मो = मेरे। सह = साथ। दाह = जलने के। मो सह दाह = मेरे जलने के साथ, सती होने के समय। उरसां = आकाश, स्वर्ग। रजवट = रजपूती, क्षात्र-धर्म। राह = रीति।

भावार्थ—हे सखी! मेरे सती होने के समय तू सुहावने ढोल बजवाना। तू तो क्षात्रधर्म की इस उलटी रीति को जानती है कि जिसमें बीज बोया जाता है पृथ्वी पर और खेती फलती है आकाश में (स्वर्ग में)।

१३—विमुहा = पीछे की तरफ। वघवाव = व्याघ्र-गंध, सिंह के शरीर की गंध।

भावार्थ—सिंह गहरी नींद में सोया हुआ है तो भी हाथी और गैंड धैर्य धारण नहीं करते। उनके पाँव पीछे ही पड़ते हैं। उन्हें व्याघ्र-गंध क्या आती है, मानों उन पर वज्र पड रहा है।

१४—वळेवा = जलने के लिये, सती होने के लिये। हूलसै = उमगित हो रही है। मरेवा = मरने के लिये।

भावार्थ—घर पर सास कहती है कि आज अचानक इतना हर्ष किस बात पर हो रहा है? (शायद उसे मालूम नहीं है कि) उसका पुत्र मरने को जा रहा है और पुत्र-वधू जलने को (सती होने को) उमगित हो रही है।

१५—अजको = उद्धत, उद्दंड।

पग पाछा छाती धड़क, काळौ पीळौ दीह ।
नैण मिचै साम्हो सुणे, कवण हकाळै सीह ॥१६॥
नायण आज न माड पग, काल सुणीजै जग ।
धारा लागीजैं धणी, तौ दीजे घण रंग ॥१७॥
गीध कळेजौ चील्ह उर कका अत ब्रिलाय ।
तौ भी सौ धक कतरी, मूछा भूँह मिलाय ॥१८॥
ऊभी गोख अवेखियौ, पेला रौ दळ सेर ।
पड़ियौ धव सुणियौ नही, लीधौ धण नाळेर ॥१९॥

भावार्थ—हे सखी ! मेरे उद्धत पति को देख । घोड़े की बाग उठाकर वह अकेला ही इस तरह शत्रु-सैन्य का शोषण कर रहा है, जिस तरह कोई शराबी शराब के प्याले को पी रहा हो ।

१६—दीह = दिन । हकाळै = ललकारे ।

भावार्थ—जिस सिंह को सामने सुनकर ही दिन काला-पीला दिखाई देने लगता है, पैर पीछे पड़ने लगते हैं, आँखे मिच जाती हैं और छाती धडकने लगती है, उसे ललकारने का साहस कौन कर सकता है ?

१७—मांडना = चित्रित करना, महावर आदि से रगना । घण = खूब ।

भावार्थ—हे नाइन ! आज मेरे पाँवों को मत रग । कल युद्ध सुना जाता है । यदि पति धारा-तीर्थ मे स्नान करे (तलवार घाट उतरे) तो फिर (सती होने के समय) खूब रंग देना ।

१८—कक = कंक पक्षी, ढीच । अन बिलाय = आँतों को विलीन कर दिया । धक = हिम्मत । सौ = वह ।

भावार्थ—गिद्ध ने कलेजा, चील ने हृदय और कक पक्षी ने आँतों को विलीन कर दिया है तो भी कत का वह साहस है कि उसकी मूँछे भौहों से मिल रही है ।

१९—गोख = गवाक्ष, झरोखा । अवेखियौ = देखा । पेला रो = दूसरों का, विपक्षियों का । सेर = प्रबल । पडियौ = गिर गया, मारा गया । धव = पति । लीधौ = ले लिया । धण = पत्नी ।

हूँ पाछै आगे हुवे, आणी नाह घरेह
जे वाल्ही धण जीव हूं, आगै मूझ करेह ॥२०॥
कंत भला घर आविया, पहरीजे मो वेस।
अब धण लाजी चूड़ियां, भव दूजे भेंटेस ॥२१॥
दरजण लंबी आंगियां, आणीजे अब मूझ।
तव टोटे गात्रं दिया, दूण सिवाई तूझ ॥२२॥

भावार्थ—झरोखे में खड़ी हुई ने देखा कि विपत्तियों का दल भारी है। अतएव पति के मरने का समाचार न सुनकर भी इसे अवश्य भावी मान कर पत्नी ने सती होने के लिये नारियल हाथ में ले लिया।

२०—आणी = लाये। घरेह = घर पर, घर को। वाल्ही धण = प्यारी पत्नी।

भावार्थ—(विवाह के समय) स्वामी स्वयं आगे होकर और मुझे पीछे करके अपने घर पर लाये थे। लेकिन (उनकी मृत्यु के बाद) यदि उनकी प्रिय पत्नी (मैं) जीवित रही तो (सती होने के समय) उन्हें मुझे आगे करना होगा। (प्राचीन काल में जब कोई स्त्री अपने पति के साथ जलने के लिये श्मशान में जाती थी तब वह अपने पति की अर्थी के आगे रहती थी)।

२१—भावार्थ—कंत! भले घर पधारे। लीजिये यह मेरा वेश धारण कर लीजिये। अब इस लज्जित चूड़ियोंवाली पत्नी से तो दूसरे ही जन्म में भेंट कर सकेंगे।

२२—अंगियां = कुरतियाँ। दूणी = दुगुनी। आणीजै = लाना।

भावार्थ—हे दर्जिन! अब मेरे लिये लंबी कुरतिये लाया करना। मेरे सधवापन की पोशाकें न सीने से जो तुझे टोटा रहेगा, उसकी पूर्ति मैं तुझे दूनी सिलाई देकर करूँगी।

विशेष—राजस्थान में सधवा स्त्रियाँ कुहनी तक की आस्तीनोंवाली कंचुकी-कुरतियाँ पहनती हैं और विधवाएँ लंबी आस्तीनोंवाली। वीरांगना के कहने का अभिप्राय यह है कि मेरे कायर पति रणभूमि से भाग कर घर चले आये

मणिहारी जारी सखी, अब न हवेली आव।
पीव मुवा घर आविया, विधवां किसा वणाव ॥२३॥
झूरै इम रङ्गरेजणी, कूड़ा ठाकुर काय।
वसन सती धण रङ्गता, दीधी आस छुड़ाय ॥२४॥
गधण कूकी र गजब, भूड़ा आगम भौण।
वळण कढ़ायो अतर धण, मुहँगो लेसी कौण ॥२५॥

है इसलिये मैं अपने आप को विधवा समझती हूँ। अतएव मेरी पोशाक भी विधवाओं जैसी होनी चाहिये। अब रही बात यह कि इस तरह की सादी और बिना तड़क-भड़कवाली पोशाक के सीने से तुझे कम सिलाई मिलेगी और तुझे घाटा रहेगा। पर इस घाटे की पूर्ति मैं तुझे दूनी सिलाई देकर करूँगी।

२३—मुवा = मरे हुए। बणाव = शृंगार।

भावार्थ—हे सखी मनिहारिन! अब से मेरी हवेली पर मत आया कर। मृतक के समान (कायर) पति घर भाग आये है। विधवाओं को शृंगार कैसा?

२४—झूरै = रोती है। इम = इस तरह। रगरेजणी = रंगरेजिन। कूडा = निकम्मा। काय = क्या।

भावार्थ—रङ्गरेजिन रोती है कि हे निकम्मे ठाकुर! युद्ध से भाग कर यह तूने क्या गजब किया। तेरी सती पत्नी के लिये सुदर वस्त्र रँगने की मेरी आशा पर तूने पानी फेर दिया।

२५—गंधण = गंधिन। कूकी = चिल्लाई। भूड़ा = अशुभ, खराब। भौण = भवन, घर। बळण = जलने के लिये, सती होने के वक्त लगाने के लिये। कढ़ायो = निकलवाया। अतर = इत्र। लेसी = लेगा।

भावार्थ—गंधिन चिल्ला उठी कि गजब हो गया। उसका (रण से भाग कर) घर आ जाना मेरे लिये तो बड़ा ही खराब सिद्ध हुआ। उसकी पत्नी ने सती होने के समय लगाने के लिये जो महँगा इत्र निकलवाया था, उसे अब कौन खरीदेगा।

सोनारी झूरै कहै, रे ठाकुर कुळ खोय ।
मुझ घड़ाई खोवणा, तुझ मड़ाई होय ॥२६॥
हूं बलिहारी राणियां भ्रूण सिखावण भाव ।
नाळो वाढण री छुरी, झपटै जणियो नाव ॥२७॥
हूं बलिहारी राणियां, जाचा [illegible] सिखाय ।
[illegible] हंदै नापणे, [illegible] धी [illegible] लाय ॥२८॥
[illegible] दोनूं कुळ, नहीं फिरती छांह ।
मुड़िया मिळसी गीदवो, वळै न धण री बांह ॥२९॥
हेली [illegible], [illegible] वालहार ।
[illegible] में होय हजार ॥३०॥

२६—झूरै कहै = रोकर कहती है । कुळ खोय = कुळ नाशक । मुझ घड़ाई खोवणा = मेरी घड़ाई खोने वाले । मुझ = मेरी । तुझ = तेरा । मड़ाई = नाश ।

भावार्थ—सुनारिन रोती हुई कहती है कि मेरी जीविका को नष्ट करनेवाले रे कुलनाशक ठाकुर ! तेरा नाश हो ।

२७—भ्रूण = गर्भ । भाव = वीरता के भाव । वाढण री = काटने की ।

भावार्थ—मैं उन रानियों पर निछावर हूँ जो गर्भ में ही उन वीर भावों की शिक्षा देती हैं कि जन्म लेते ही बालक नाल काटने की छुरी को लेने के लिये झपटता है ।

२८—सांच = सच्ची, दृढ । जाचां = जच्चा, प्रसूता । हंदै = के । नापणे = तापने के लिये (अंगीठी) । धी = पुत्री ।

भावार्थ—मैं उन रानियों पर वलिहारी हूँ जो गर्भ में ही (वालिकाओं को) ऐसी दृढ शिक्षा देती हैं कि प्रसूतिका-गृह में अपने तापने की अंगीठी की अग्नि को एकटक देखकर पुत्री हर्पित होती है

२९—मुड़िया = मुड़ने पर । गीदवो = तकिया । वळै = फिर ।

भावार्थ— हे कंत ! अपने और मेरे दोनों के कुलों को देखना न कि अपनी फिरती हुई छाया को । यदि आप युद्ध से मुड़ आये तो सिरहाने के लिए तकिया भले ही मिल जाय, पर पत्नी की भुजा तो फिर नहीं मिलेगी ।

३०—हेली = हे अली ।

रुड हुआ जीवै जिके, सदा न हेरै साथ।
सीहा रै गळ साकळै वे भड़ घालै हाथ ॥३१॥
धीर धिया सूतौ धणी, कुरळै चकवी काय।
देखीजै मुज्झ दीहरै, सुख दो जाम सिवाय ॥३२॥
भोला की डर भागियौ, अंत न पहुड़ै ऐण।
बीजी दीठा कुळ वहू, नीचा करसी नैण ॥३३॥
ढोल वरज सब भेज घर, धर नाळेर सुधाम।
घावा कंत पधारिया, पावा हूंत प्रणाम ॥३४॥

भावार्थ—हे सखी ! उस आश्चर्य्य की कथा तुझसे क्या कहूँ। मै तो अपने कंत पर बलिहारी हूँ। मै घर मे जिन हाथो को दो देखती हूँ, वे रण मे हजार हो जाते है।

३१—जिके = वे। साकळै = शृंखला, जंजीर। भड़ = भट, शूरवीर। घालै = डालते है।

भावार्थ—वे ही वीर सिंहों के गले में जंजीर डालने को हाथ लगा सकते हैं जो कभी साथ नहीं ढूँढ़ते और सदा अपना शिर हथेली पर लिये फिरते है।

३२—कुरळै = चीख़ती है। काय = क्या।

भावार्थ—हे चकवी ! इतनी क्यों चीख़ती है? बहुत ही धैर्य्य दिलाने पर पति जरा सोये है। सूर्य्योदय होने पर तू दो पहर अधिक सुख देख लेना। (क्योंकि मेरे पति का युद्ध देखने को सूर्य्य भगवान दोपहर तक अपना रथ रोक लेगे।)

३३—भोळा = मूर्ख। अंत = मृत्यु। पहुड़ै = पहुँचेगी। ऐण = घर।

भावार्थ—रे मूर्ख ! किस डर से तू भाग आया ? क्या तू यह समझता है कि मृत्यु घर तक नहीं पहुँचेगी ? यहाँ यह सिवाय होगा कि तेरे कारण वह बेचारी कुलवधू (तेरी पत्नी) लज्जा से नीची आँखे करेगी।

३४—वरज = बंद कर, रोक दे। घावा = घायल।

भावार्थ—(हे सखी !) ढोल का बजाना बंद कर, सब को अपने-अपने घर भेज दे और सती होने के नारियल को

रण खेती रजपूत री, वीर न भूलै बाळ।
बारह बरसां बापरो, लहै बैर लंकाळ ॥३५॥
मत सोचै जाणै मनां, मो नै बाळक माय।
बैर पराया बाहुडै, रहै न घर रा जाय ॥३६॥
ओरां कां फळ जागियां, लडणां जाग लंकाळ।
गुडै धणीचा गाजणा, तो माथै त्रंबाळ ॥३७॥
अठै सुजस प्रभुता उठै, अवसर मरियां आय।
मरणो घर रै मांझियां, जम नरकां लै जाय ॥३८॥
बंब सुणायो वीन्द नूं, पेसता घर आय।
चचळ सामहै चालियो, अचल बरन छुडाय ॥३९॥

भी यथास्थान रख दे। घायल कंत घर पधार आये है। उनके चरणों मे प्रणाम।

३५—बाळ = बालक। लहै = लेते है। लंकाळ = सिंह।

भावार्थ—युद्ध तो राजपूत की खेती (व्यवसाय) है इसे वीर बालक नही भूलते। वे सिंह बारह वर्ष की उम्र मे ही अपने बाप के बैर का बदला लेते है।

३६—हे माता! मुझे बालक समझ कर मन मे चिंता मत करना। जहा पराये बैर भी ले लिये जाते है, वहाँ घर के क्या जाने पावेंगे ?

३७—गुडै = बज रहे है। लंकाळ = सिंह। चा = के। गाजणा = गरजने वाले। तो माथे = तेरे मस्तक पर, तेरे बल पर। त्रंबाळ = नगाड़े।

भावार्थ—हे सिंह! औरों के जागने से क्या लाभ है? तू जाग। स्वामी के गरजनेवाले नगाडे तेरे ही बल पर तो बज रहे है।

३८—अठै = यहाँ, इस लोक मे। उठै = वहाँ, परलोक मे। मांझियाँ = मे।

भावार्थ—आये मौके पर मरनेवालो को इस लोक मे सुयश और परलोक मे प्रभुत्व प्राप्त होता है। पर जो घर मे मरते है उनको यमराज नरक मे ले जाता है।

३९—बंब = नगाडा। सुणायो = सुनाई दिया। वीन्द नूँ = वर को। पेसता = घुसते हुए। चचळ = अश्व।

पहल मिळे धण पूछियौ, किण कीधा किण हाथ।
बीजल साहे बोलियौ, इण डाकण भू आथ ॥४०॥
ढोल सुणता मगली, मूछाँ भूह चढत।
चॅवरी ही पहचाणियौ, कुवरी मरणौ कत ॥४१॥
ग्रीव न मोडे देखणौ, करणो शत्रु सिराह।
परणता धण पेखियौ, ओछी ऊमर नाह ॥४२॥
पेटी मौड़ छिपाविया, जाण घाव न जीव।
हेली दिवसा पाहुणै, पड़वे दीठो पीव ॥४३॥

भावार्थ—विवाह करके आने पर दूल्हे को घर मे घुसते-घुसते युद्ध का नगाडा सुनाई दिया। वह उसे सुनते ही दुलहिन के अचल से गॉठ छुडा कर अपने अश्व की ओर वढ चला।

४०—मिळे = मिलन। किण = किसने। इण = इस। आथ = (स० अर्थ) = लिये।

भावार्थ—पत्नी ने प्रथम मिलन के समय पूछा कि हे नाथ! हाथ मे ये कठोर चिन्ह किसने किये? तलवार लेकर पति बोला कि प्रिये! इस डाकिनी ने और पृथ्वी के लिये।

४१—मंगळी = मागलिक। चॅवरी = विवाह मडप। कॅवरी = कुमारी।

भावार्थ—विवाह समय मागलिक ढोल सुनकर वर की मूॅछे भौंहों से जा लगी हैं, यह देख कर कुमारी ने विवाह मडप मे ही जान लिया कि कंत मरण-प्रेमी है।

४२—सिराह = सराहना। परणता = विवाह के समय।

भावार्थ—बिना गर्दन मोड़े देखना और वीर हो तो शत्रु की भी सराहना करना, इन दो वातों से विवाह के समय ही पत्नी ने समझ लिया कि पति की आयु थोड़ी है।

४३—पेटी = सदूक। मौड = सेहरा, विवाह के समय वर के सिर पर बॉधने का मौर। पड़वै = शयन-गृह मे।

भावार्थ—शयनागार मे सदूक मे उनका सेहरा रखते समय जो उनके घाव मैंने देखे, उनसे ही, हे सखी! मैंने ताड़

विण माथै वाढै दळा, पोढै करज उतार ।
तिण सूरां रो नाम लै, भड़ बांधै तरवार ।।४४।।
भड़ सोही पहला पड़ै, चील विलग्गा चैंक ।
नैण बचावै नाह रा, आप कळेजो फैंक ।।४५।।
बळ खांधै जण जण वहै, कस बांधै करवाळ ।
परख भड़ां अर कायरां, बज त्रहियां त्रंबाळ ।।४६।।
बळण अकेली किम बणै, जोवै संसय जीव ।
वै दिन जो कायर बणौ, पीहर भेजो पीव ।।४७।।

लिया कि पति (थोड़े) दिनों के ही पाहुने है । अर्थात् शीघ्र ही कही न कहीं युद्ध मे मारे जायंगे ।)

४४—विण = विना । वाढै = काटता है । पोढै = धराशायी होता है । करज = कर्जा, ऋण ।

भावार्थ—जो विना शिर ही सेनाओं को काट डालता है और अपने ऋण को चुकाकर धराशायी होता है, उस शूरवीर का नाम लेकर योद्धागण तलवार बाँधा करते हैं ।

४५—सोही = वही । विलग्गा = स्पर्श, सामीप्य । चैंक = चौंक कर ।

भावार्थ—योद्धा वही है जो सब से पहले मरता है और युद्ध-क्षेत्र में चील की चोंच के स्पर्श से चौंककर अपना कलेजा फेंक स्वामी के नेत्रों की रक्षा करता है ।

४६—खांधै = कधों पर । वहै = चलते हैं । करवाळ = तलवार । त्रंबाळ = नगाडा । त्रय त्रहियां = बजने पर । जण = मानो ।

भावार्थ—सब कोई तलवार कसकर बाँधते हैं और ऐसी अकड़ से चलते हैं मानों सारी शक्ति उन्हीं के कंधों पर है । परन्तु शूर और कायर की परीक्षा उस वक्त होती है, जिस वक्त युद्ध के नगाडे टहटहाते है ।

४७—बळण = जलना । किम बणै = कैसे हो सकता है ।

भावार्थ—हे पति ! मेरे जी मे यह सशय है कि उस दिन युद्ध के अवसर पर यदि आप कायर हो गये तो मै अकेली कैसे जल सकूँगी । यदि ऐसी संभावना हो तो मुझे अभी से ही पीहर भेज दीजिये ।

सीह न वाजौ—ठाकुरा, दीन गुजारौ दीह।
हाथळ पाडै हाथिया, सौ भड़ वाजै सीह ॥४८॥
कायर री धण यूं कहै, छानै कत छिपाय।
सीस बिकै जिण देसड़ै, साई सौ न दिखाय ॥४९॥
नराँ न ठीण नारिया, ईखौ सगत एह।
सूरा घर सूरी महळ, कायर कायर गेह ॥५०॥
सखी नथी धव जीवता, अरिया पायौ चैन।
बळता लीधो गोद में, तौ भी मूछ मुड़ैन ॥५१॥
इळा न देणी आपरी, हालरिया हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण वडाई माय ॥५२॥

४८—बाजौ = कहलाओ। दीह = दीन, समय। हाथळ = पजा। पाडै = गिराता है। सौ = वह।

भावार्थ—सरदारो! तुम सिंह मत कहलाओ। क्योंकि तुम दीन बने हुये अपने दिन गुजार रहे हो। सिंह कहलाने का अधिकारी तो वह वीर है जो अपने पजे से हाथियों को नीचे गिराता है।

४९—छानै = चुपके से। जिण = जिस। देसड़ै = देश मे।

भावार्थ—कायर की स्त्री चुपके से अपने पति को छिपा कर कहती है कि हे प्रभो! जिस देश मे सिर विकते हों, वह देश कभी मत दिखाना।

५०—न ठीणौ = निंदा मत करो। ईखौ = देखो। महळ = महिला।

भावार्थ—हे पुरुषों! स्त्रियों की निन्दा मत करो। यह तो सगति देखना चाहिये। वीरों के घर मे वीर महिला मिलेगी और कायर के घर मे कायर।

५१—नथी = नहीं। धव = पति। अरिया = शत्रुओं ने। बळता = जळते वक्त। लीधो = लिया।

भावार्थ—हे सखी! पति के जीवित रहते शत्रुओं ने कभी चैन नहीं पाया और अब जलते समय मैंने इन्हे गोद मे ले रखा है तो भी इनकी मूँछ नहीं मुड रही है। (अर्थात् इस दशा मे भी ये शत्रुओ को दुखी कर रहे है।)

५२—इळा = पृथ्वी। आपरी = अपनी। हालरिया = लोरिया। हुलराय = झुलाती हुई।

काय उजाळी कळणी, जे मद पीवण जेज ।
कंत समप्पै हेकलौ, कटका ढाहि कलेज ॥५३॥
बेरी वाड़ै वासड़ौ, सदा खणंके खाग ।
हेली के दिन पाहुणो, ऊढा भाग सुहाग ॥५४॥
हूँ हेली अचरज कहूँ, घर मे बाथ समाय ।
हाकाँ सुणता हूलसै, मरणो कौच न माय ॥५५॥
तन दुरंग और जीवतन, कढणा मरणौ हेक ।
जीन विणट्टा पे करौ, नाग मरीजे नेक ॥५६॥

भावार्थ—अपनी जमीन किसी को न देना—इस भाव के झूले के गीतों के साथ झुलाती हुई माता पालने में ही पुत्र को मरने की महत्ता सिखा देती है ।

५३—काय = क्या । उजाळी = उत्सुक । कळणी = चील । जेज = देर । हेकलौ = अकेला । ढाहि = ढहाकर ।

भावार्थ—ए चील ! इतनी आतुर क्यो है ? मद्यपान करने मात्र ही की तो देरी है । फिर तो कंत अकेले ही सेनाएँ ढहाकर तुझे कलेजे समर्पित कर देंगे ।

५४—वाड़ै = घर के, वाड़े के । वासड़ौ = निवास । खणंकै = खनकती रहती है । खाग = तलवार । ऊढा = नवोढ़ा ।

भावार्थ—हे सखी ! वैरी के घर के पास इसका निवास है, जहाँ सदा तलवार खनकती रहती है । कौन जाने इस नवोढा के भाग्य मे सुहाग कितने दिनो का मेहमान है ।

५५—बाथ = गोद मे, भुजाओ मे । हाकाँ = शोर । हूलसै = हर्षित होते है । कौच = कवच । माय = मे । मरणो = मरण-प्रेमी । हूँ = मै ।

भावार्थ—हे सखी ! मै तुझे एक आश्चर्य की बात कहती हूँ । वे (मेरे पति) घर मे तो (मेरी) भुजाओं मे समा जाते है । परन्तु युद्ध का शोर सुनते ही वे मरण-प्रेमी इतने फूलते है कि कवच मे भी नहीं समाते ।

५६—दुरंग = दुर्ग । कढणा = निकलना । हेक = एक । विणट्टा = बिना ।

भागीजै तज भींतडा, ओडे जिम तिम अत।
किण दिन दीठा ठाकुरा, काळा दरड़ करत ॥५७॥
जिण वन भूल न जावता, गेंद गिवल गिड़राज।
तिण वन जबुक ताखडा, ऊधम मडै आज ॥५८॥
—वीर सतसई

(२)

उम्मेदसिंह के युद्ध का वर्णन

(दोहा)

ससिअंबरवसु इक समा, विक्रम सकगत वेर।
वुंदियपुर वाजार विच, झरिग वाढ असि झेर ॥१॥

(मुक्तादाम)

अमावसि सावन मास अनेह, मच्यो इम वुंदिय खग्गन मेह ॥
छई नभ गिद्धनि चिल्हनि छत्ति, घुमडत गूदनचञ्चुवघत्ति ॥२॥

भावार्थ—दुर्ग मे से शरीर का निकलना और शरीर मे से प्राण का निकलना एक ही बात है। तब तो किले मे से मरकर ही निकलना अच्छा है जिससे नाम तो रहे।

५७—भींतडा = घर। भागीजै = भाग जाओ। ओडे = ओट मे। दरड = बिल। काळा = काला साँप।

भावार्थ—अब ज्यों त्यों किसी की ओट मे होकर घर छोड़ भाग जाओ। ठाकुरो! काले साँप को किसदिन बिल बनाते देखा है?

५८—गैद = गयंद, हाथी। गिवल = गैंडे। गिड़ = शूकर। ताखडा = सामर्थ्यवान। मडै = मचा रहे है।

भावार्थ—जिस वन मे हाथी, गैंड और बड़े-बड़े शूकर भी भूल कर नही जाते थे, उसी वन मे आज गीदड भी बडे शक्तिवान बने उपद्रव मचा रहे है।

१—ससि = १। अंबर = ०। वसु = ८। इक = १। ससि अंबर वसु इक समा = १८०१। समा = सम्वत्। वुंदियपुर = बूंदी शहर। झरिग वाढ असि झेर = तलवारो के वाढों की झडी लग गई। अर्थात् खूब जोरों से तलवारे चलीं।

२—अनेह = समय। छई = छा गई। गिद्धनि चिल्हनि = गीध और

लगी लुग्गि तुम्मन अच्छरि लेन, गुथ्यो रस भाव विभावन गैन ॥
रच्यो तहँ तंडव नारद रारि, कर्यो ऋषि व्हाँ महती झनकारि ॥३॥
उड़े सिर झेलत उद्धहि ईस, वहै हत चट्टिय के भुज-बीस ॥
चरट्ठहि रत्त खिलै चउसट्ठि, ववक्कहि वावन, गावन गट्ठि ॥४॥
चुरैलिन मटन फालन चाल, लगावत टारिन घुम्मर ताल ॥
वजै असि टक्करन खग्गन वाढ, गिरै भट भीरु भजे तजि गाढ ॥५॥
उमेद जिनेस रच्यो रण खेल, दुर्यो गढ घुग्घुव दुग्ग दलेल ॥
फवै असि गुम्मार ढालन फारि, वहै जनु सब्बुवतंति विदारि ॥६॥
गिरै कटि [illegible] गात करक्कि, झरै उडि धारन वूर झरक्कि ॥
कटे सह सत्थिन जानुव जंघ, सु ज्यों गज सुंडि निखट्टन सघ ॥७॥

चीलों की । छत्ति = छत्री । घुमंडत गृद्धन चचुव धत्ति = भेजे पर चोंच चलाने की ताक में मडराते थे ।

३—अच्छरि = अप्सराएँ । गुथ्यो रस = शृंगार रस के भाव, विभाव आदि गुथे । गैन = आकाश में । तंडव = नृत्य । रारि = लड़ाई । व्हा = वहा । महती = नारद की वीणा का नाम है ।

४—उड़े सिर झेलत उद्धहि ईस = उड़े हुए मस्तकों को शिव ऊपर ही झेलते है । वहै = चलते है । चरट्ठहि रत्त खिलै चउसट्ठि = ६४ योगिनिये रक्त पीकर प्रफुल्लित होती हैं । ववक्कहिं = वकझक करती है । गट्ठि = एकत्र होकर ।

५—फालन = कूदती फॉदती हुई । घुम्मर = चक्कर । वजै...... वाढ़ = तलवारो के साथ तलवारों के टकराने से वाढ वजते है । गाढ = हिम्मत ।

६—उमेद = उमेदसिह, बूँदी नरेश । घुग्घुव = उलूक । दुग्ग = दुर्ग । दलेल = दलेलसिह, जयपुर की सेना का अध्यक्ष । सब्बुव = साबुन । वहै जनु. . विदारि = मानों साबुन की टिकिया को वेध कर लोहे आदि का तार वाहर निकला हो ।

७—किरै = उछलते है । करक्कि = टूटकर । धारन = धारो की । वूर = रीठ, झडी, निरतर वर्षा । सह = साथ, सहित । सत्थिन = जघा का सव से मोटा भाग, राजस्थानी में इसे साथळ भी कहते है । जानुव = जंघा का मध्य भाग, घुटना । सु ज्यों = वह मानों । सघ = समूह ।

फदक्कहिँ कढ्ढहिँ कालिक फिप्फ, भचक्कहिँ टोप कपालन भिप्फ ॥
उडे सिर फुट्टत भेजन ओघ, मनो नवनीत मटक्किय मोघ ॥८॥
मचक्कहिँ रीढक वक्र अमाप, चटक्कहिँ ज्यों मिथिलापुर चाप ॥
भसै कढि लोचन सोनित धार, चढै सिसु मच्छ विलोम कि वार ॥९॥
कढै गल स्वास वजै विकरार, धमै धमनी जनु लग्गि लुहार ॥
कढै हिय छत्तिय फट्टि किवार, सु ज्यों ह्रद लोहित कज सुढार ॥१०॥
परै कढि अत अपुव्व प्रकारि, फनीगन जानि टिपारन फारि ॥
परै छुटि सधित प्रान अपान, मनो पय पानिय लोन मिलान ॥११॥
वनै फटि डाच कढे रद वड्ड, किधो धृत डव्विय रङ्क कवड्ड ॥
गिटै रसना कढि भग्गन ग्राम, चढै नचि नागिनि ज्यो पय आम ॥१२॥

८—कालिक फिप्फ = कलेजे और फेफडे। कपालन भिप्फ = कपालों को भेदन कर के। भेजन = भेजे। ओघ = जोर से। मनो.. ... मोघ = मानो मक्खन की मटकी फूटी हो।

९—रीढ़क वक = रीढ़ की हड्डी। अमाप = बहुत सी, विशाल। चटक्कहिं......चाप = जनक राजा की पुरी के धनुष टूटे हों। चढ़ै सिसु.. . कि वार = छोटी मच्छी पानी मे उलटी चढ़ती हो।

१०—स्वास बजै विकरार = साँस के निकलने की भयंकर आवाज होती है। धमनी = धौंकनी। धमैं धमनी.... लुहार = मानो लोहार (आग सुलगाने के लिये) धौंकनी चला रहा हो। कढैं = निकलती है। छत्तिय = छाती। किवार = किवाड़। कढै..... किवाड़ = छातीरूपी किवाड़ों के फटने से हृदय बाहर निकलते है। ह्रद = जलाशय। लोहित कज = लाल कमल। सुढार = सुन्दर।

११—अत = आँते। अपुव्व प्रकारि = विचित्र रीति से। फनीगन = सर्पो का समूह। परै. अपान = मिले हुए श्वास-निश्वास की सधि छूटती है। पय = दूध। पानिय = जल। लोन = नमक।

१२—डाच = मुँह। वनै वड्ड = मुँह फटकर बड़े बड़े दाँत दिखाई देते है। किधो. . . कवड्ड = मानो दरिद्री ने डिब्बेमे कौड़ियाँ रखी हों। गिटै = निगलती है। ग्राम = समूह। आम = कच्चा।

लगें दृग मुच्छ फरप्फत लीन, मना उरभ्भी वनसी मुख मीन ॥
छलें छत रत्त छछक्कन छुट्टि, फवै जनु गग्गरि जावक फुट्टि ॥१३॥
झुकें असि मत्त दुहत्थन झारि, मनों रजकालि सिला पट मारि ॥
लुटें फटि पेटिय लेटिय लंब, तनै पट जानि कुविंद कदंब ॥१४॥
गनें रव टोप उडें फटि मत्थ, अलावुव जानि अतीतन हत्थ ॥
कढे दृग लग्गि कनीनिय काल, मनों कुवलोहित भौंरन माल ॥१५॥
चलै फटि ढाल वकत्तर चीर, सु ज्यों तरु ताडन पत्त समीर ॥
भरै छिय गोलिय गावत गित्त, मनो पटवा बटवा चित्र वित्त ॥१६॥
रटै फटि कोच करी रननंकि, झरैं घन वादन ज्यों झननंकि ॥
घटै दम मत्त थकैं छकि वाय, मनो मद पामर जीह जड़ाय ॥१७॥

गिटै रसना . आम = जीभ झागों के समूह को निगलती है सो मानो सर्पिणी कच्चा दूध पीती है।

१३—मुच्छ = मूँछे । मानों......मीन = मानो मच्छी पकड़ने का कांटा मच्छी के मुख मे फँस गया है। छत = (सं० क्षत) घाव। रत्त = रक्त, रुधिर। फवैं. .. फुट्टि = मानो जावक का फूटा हुआ घडा शोभायमान है।

१४—झुकें. . झारि = मतवाले वीर झुककर दोनों हाथों से तलवार का वार करते हैं। मनों मारि = मानो धोबियों की पंक्ति शिला पर कपड़े पछाड रही है। पेटिय = कमर पेटी। लेटिय लंब = लम्बी पडी हुई। तनै ..कदंब = मानो जुलाहों के समूह वस्त्र फैलाते है। कुविंद = जुलाहे। कदंब = समूह।

१५—मत्थ = मस्तक। अलावुव हत्थ = मानो जोगियों के हाथ से तूँबे गिरते है। कनीनिय काल = आँखो की काली पुतली। कुवलोहित = लाल कमल। माल = समूह।

१६—ढाल वकत्तर चीर = ढाल, बख्तर और वस्त्र। सु ज्यों. ... समीर = मानो पवन से ताड वृक्ष के पत्ते फटते है। गावत गित्त = गीत गाती हुई, आवाज करती हुई। पटवा = पटुवा, रेशम का काम करनेवाली जाति विशेष। बटवा = बटुआ।

१७—कोच करी = कवच की कड़ी। घन वादन = काँसे आदि के बने हुए वाद्य। भरैं = बजते हैं। झननंकि = झंकार की आवाज के साथ। घटै दम = दम घटता है, शक्ति क्षीण होती है।

कढ़ैं वपु छक्कि अरच्छिन व्रात, तृणध्वज अग्ग कि गज्ज प्रपात ॥
लगैं निकसैं छकि पट्टिस लाल, मनो परतीयन के कर,जाल ॥१८॥
सुहैं फटि हड्डु चटच्चट सधि, चटक्कत प्रात गुलाब कि गंधि ॥
उठैं बिनु मत्थ किते तनु तुग, थेइत्थेइ नच्चत थुंगत थुग ॥१९॥
बवक्कत डाच कितेकन बैन, मनो बड बक्कर टक्कर मैन ॥
गिरै बररक्कत पंसुलि गात, मनो कठछप्पर पत्थर पात ॥२०॥
छुटैं पल,जानु कढैं नल हड्डु, मनों रद बारन बगर बड्डु ॥
लटक्कत पाय रकाबन रुक्कि, मनों तप सिद्ध अधोमुख झुक्कि ॥२१॥
मलगत छत्तिन के क्रम मप्पि, मनों नट पट्टरि पाय मलप्पि ॥
छुटै घन घायक सायक सोक, उडै सरघा घन ज्यों तजि ओक ॥२२॥

मत्त = मतवाले । वकै = बकते हैं। छकि घाय = घावों से परिपूर्ण होकर । मद = शराब ।

८—वपु = शरीर । छक्कि = छेद कर। व्रात = समूह । तृणध्वज . ... प्रपात = जैसे मेघ की गर्जना से बॉस का अकुर फूट निकलता है। पट्टिस = कटार । छकि = छक कर। मनों. . जाल = मानो परकीया नायिका के हाथ जालियों से निकले है। (परकीया नायिका महँदी से रग हुआ हाथ दिखा कर लाल रंग के सकेत से उपपति को अपना रजस्वला होना सूचित कर उसके आने का निषेध करती है।)

९—तुग = विशाल । सुहैं = शोभायमान होती है । चटच्चट संधि = हड्डियों के जोड़ तड़कते हैं। थुंगत थुंग = समूह के समूह।

०—डाच = मुख । बवक्कत मैन = कइयों के मुँह से ऐसे अवाच्य शब्द निकलते हैं, जैसे बड़े कामी बकरों की टक्कर मे भी नहीं निकलते। बररक्कत = बरर की आवाज के साथ। पसुलि = पसली ।

१—छुटैं. . बड्डु = मॉस छूट कर घुटनों सहित नली की हड्डियॉ निकलती हैं, मानो हाथी के बडे दॉत बंगड सहित शोभायमान हैं। पल = मॉस। मनो . झुक्कि = मानो कोई सिद्ध नीचा मुँह किये तपस्या कर रहा है।

२—घन = बहुत से । घायक सायक = घाव करनेवाले तीर ।

छकै कति वृत्त फिरै गुरि छोरि, बनै जनु बालक भभह् भोरि ॥
गिरै सब छिद्र बने सिर तत्त, मनो सरघान तजे मधुछत्त ॥२३॥
सरै घन सांगिन भिन्न सरीर, कुमारिन के जनु छिद्र करीर ॥
बकै बहु प्रेत मिलै गल बत्थ, किधौ रन मल्ल अपूरब कत्थ ॥२४॥
जगावत हाक रचावत जंग लगावत भंग्र नट्ट मलंग ॥
घसैं चटि डाकनी के मृत छत्ति, मनो कि विदूसक को तिय मत्ति ॥२५॥
अटै पर एक किते छक ओन, किते इक नैन लग्ग भगि कोन ॥
करै कटि जीह गिरा अध कूक, मनो कि परगिर प्रेरित मूक ॥२६॥
भ्रमै तर ओट किते इक कान, घनैं मुख अद्ध रचै घमसान ॥
किते इक तल्ल किते गत केस, बने बहुरूप मनो नव वेस ॥२७॥
मिलै रसना कटि नक्कुट मूल, फबै भुजंगी कि लगी तिलफूल ॥
किते रन टेकि उठै रन रत्त, मनो मदछाकन पामर मत्त ॥२८॥

उडैं. . .ओक=मानो मधुमक्खियाँ अपने छत्तों को छोड कर उड़ती है। सरघा=मधुमक्खी। ओक=घरा, छत्ता।

२३—वृत्त=चक्राकार में। भभह् भोरि=बच्चों का एक खेल विशेष। मनो ...मधुछत्त=मानो मधुमक्खियों के छोडे हुए छत्ते है।

२४—सरैं.. . .करीर=बरछियों से बहुत छिदे हुए शरीर चलते है, मानो कातिक माह में लडकियों के बहुत छिद्रवाले घड़े है। करीर=घड़े। गल बत्थ=गलबहियाँ।

२५—हाक=पुकार। मलंग=उछल-कूद। घसैं. ...मत्ति=मरे हुओं की छातियों को डाकिनियाँ घिसती है, जैसे कामी पुरुष को स्त्री। विदूसक=कामी पुरुष।

२६—अध कूक=अस्पष्ट आवाज मे। मनौं.. ...मूक=दूसरे= की वाणी से प्रेरित किया हुआ गूँगा मनुष्य।

२७—भ्रमैं=फिरते है। घनैं .घमसान=कोई आधे मुखवाले युद्ध करते है। बहु रूप=भाड। नव वेस=नया स्वाँग। गत केस=बिना बालवाले।

२८—मिलैं. ..तिलफूल=जीभ कटकर नासिका के मूल से मिलती है, मानो तिल के फूल से लगी हुई सर्पिणी शोभा देती है। रन रत्त=युद्ध-प्रिय वीर। मद छाकन=नशे मे चूर। पामर= शराबी। मत्त=मतवाला।

रहै कति गिद्धन कों गल लाय, कहै कति हू रव ऐंचत हाय ॥
बकै कति मात पिता तिय बैन, गिरै कति मोहित उच्छलि गैन ॥२९॥
अव घन सावन को इत तुट्ठि, बरूथ घटा इत आयुध बुट्ठि ॥
बहै पुर बुंदिय सोन बजार, धपी जनु जोहि सरस्वति धार ॥३०॥
गिरै जल बद्दल गग सु गाथ, पुर स्त्रिय असुव जामुन पाथ ॥
वही इम वेनिय पत्तन बीच, मिलै बहु मुक्ति जहाँ लहि मीच ॥३१॥
बन्यो रन बुदिय सावन अद्द, दुधाँ असि ज्वाल भयो पुर दद्ध ॥
चुहट्टन लग्गिय लुत्थन लुत्थि, बिथारिग हट्टन बट्टन बुत्थि ॥३२॥
समाकुल रुड परे खिलि खड, ढरे बनिजारन के जनु टड ॥
डडक्कत डाहल के डमरूक, घुरावत घाय घने जनु घूक ॥३३॥

—गल लाय = गले से लगाकर। रव ऐंचत हाय = हाय, हाय की आवाज़ करते है। कति = कहीं। मोहित = मूर्छित होकर। उच्छलि गैन = आकाश मे उछल कर गिरते है। गैन = आकाश।

—अव. .तुठि = मानो श्रावण माह का मेघ प्रसन्न होकर वर्षा कर रहा है। बरूथ . . बुट्ठि = सेनारूपी घटा इधर शस्त्र बरसाती है। सोन = रुधिर। जोही = वही। धपी.. ...धार = वही मानो सरस्वती (नदी) की लाल धारा प्रवाहित हुई।

—गिरै . . गाथ = बादलों से जल गिरता है, वही श्रेष्ठ यशवाली गगा है। पुर पाथ = बूँदी शहर की स्त्रियों के (कज्जल युक्त) नेत्रों से आँसू गिरते है, वही यमुना का जल है। इम = इस प्रकार। वेनिय = त्रिवेणी। पत्तन = नगर। मिलै . . मीच = मृत्यु होने पर जिस त्रिवेणी में मुक्ति मिलती है।

—दुधाँ.. ...दद्ध = दोनों ओर की तलवार की ज्वाला से पुर दग्ध हो गया। चुहट्टन.. लुत्थि = बाजारों मे लोथों ही लोथों का ढेर हो गया। बिथारिग = बिखर गये। हट्टन = हाटे। बट्टन = मार्ग। बुत्थि = बहुत।

—समाकुल टंड = मस्तक रहित शरीरों के टुकड़े होकर पड़े है, मानो बनजारों का टाडा पडा है। डडक्कत = बजते हैं। डाहल = भैरव, देवी आदि। डमरूक = डमरू, वाद्य विशेष।

रटैं सिर मार अटैं कति रुड, मिटैं कति जोर फटैं कति मुड ॥
वरैं सिर मागि भरैं हर बैल, छकैं कति छोह हकैं रन छैल ॥३४॥
लगै कति कंठ लरत्थर पाय, जगैं कति प्रेत ठगैं भट जाय ॥
लखे कति हूर चखैं मिलि लाह, नखैं नभ फूल रखैं गिनि नाह ॥३५॥
फिरैं कहुँ कोच खिरैं लगि खग्ग, फिरैं कति मत्त भिरैं जनु फग्ग ॥
घिरैं सिर वाढ गिरैं अति घोट, तिरैं नद सोन तिरैं कहुँ घोट ॥३६॥
जरैं उडि अग्नि झरैं असि जोर, ढरैं भट केक टरैं जिम ढोर ॥
दरैं कति कुप्पि, धरैं धक दाव, भरैं कति भूमि मरैं मृत भाव ॥३७॥
मरैं थकि स्वाम परैं कहुँ मूढ, अरैं कहुँ हूर वरैं नवऊढ ॥
ररैं हरि केक लरैं थकि राम, टरैं जिय केक सरैं तजि हास ॥३८॥

घुरावत ..वूकैं = उल्लूकों के समान बहुत से घायल बोलते हैं।

३४—वरैं . बैल = कितने ही शिरों को लेकर शिव अपने बैल पर भरते है (लादते हैं)। छकैं ..रन छैल = रण रसिक वीर क्रोध मे छक कर आगे बढते है।

३५—लरत्थर पाय = पाँव लडखड़ाते हैं। जगै .... जाय = कितने ही प्रेत उठते है और वीरों को ठगते है। हूर = अप्सरा। नखैं . नाह = आकाश से फूल गिराकर उनको अपना पति मानकर रखती है। नखै = डालती हैं, गिरती है।

३६—फिरै . .. खग्ग = तलवारें लगकर कहीं कवच गिरते हैं। कति = कहीं। जनु फग्ग = मानो फाग खेल रहे है। घिरै.. ... घोट = रुधिर की नदी मे गिरे हुये कहीं पर घोड़े तैरते हैं।

३७—केक = कई एक। ढोर = पशु, गाय, भैंस आदि जानवर। कुप्पि = कुपित होकर। धक = वेग के साथ। जरै.. ...भाव = जोर से तलवारों के पड़ने से अग्नि उड़कर जलती है, जिससे कितने ही वीर गिरते है और कितने ही पशु के समान टलते है और कितने ही क्रोध करके वेग के साथ दाव देकर विदीर्ण करते है अर्थात काटते है। दरै = विदीर्ण करते हैं।

३८—मूढ = मूर्छित होकर। नवऊढ = नवीन। अरै . नवऊढ = मूर्छित होकर कितनी ही अप्सराएँ हठ करके नवीन वर करती

फटै धर प्रेत बटैं सिर फॉक, लटै मन केक, कटै उर, लॉक ॥
खुलैं कहुँ नैन, डुलैं कहुँ खग्ग, झुलै कहुँ उद्ध, फुलै मुख झग्ग ॥३९॥
छुलक्कत धायन रत्त छछक्क, उरज्झत केस बनैं अकवक्क ॥
त्रहक्कत तंतिन सिंधुव तार, दहक्कत भूतल देत दरार ॥४०॥
झनकत पक्खर, वेधित बट, घमकत घुग्घर घंटन घट ॥
बढी कुणपावलि उग्र बखान, मनों बड़ पत्तन दिग्घ मसान ॥४१॥
गवाच्छन जालिन के पट डारि, रही रन बुंदिय नारि निहारि ॥
बढी घन मार मची हथबाह, रुक्यो रवि जपत वाह सिराह ॥४२॥
अरयो नृप छोनिय लैन उमेद, खिज्यो इम देत दलेलहिं खेद ॥
बढे गढ़ सम्मुह छेकि बजार, मिली तहँ सत्रु हजारन मार ॥४३॥
चले सर चंड चटठ्ठत चाप, मचावत पखन सोक अमाप ॥
बहैं बरछी असि तोमर तोम, बनै नर कातर लोम विलोम ॥४४॥

हैं। ररै हरि केक = कई एक विष्णु भगवान को रटते हैं। सरैं तजि होस = चेत को छोड कर चलते हैं।

३९—धर = धड़। बटै = बॉटते हैं। सिर फॉक = सिर के हिस्से को। लटै मन = मन मोडकर। लॉक = कमर। झुलैं कहुँ उद्ध = ऊपर झूलते हैं।

४०—छुलक्कत = छलकता है। दहक्कत = दहकता है। अकवक्क = हक्का बक्का, विभ्रांत। त्रहक्कत = बजते हैं।

४१—पक्खर = भूल। झनकत = झकार करते हैं। घुग्घर = घुँघरू। घंटन घंट = गले की घंटियॉ। कुणपावलि = मुर्दों की पंक्ति। मनों मसान = मानों किसी बड़े नगर का श्मशान है।

४२—गवाच्छन . डारि = झरोखों की जालियों पर परदे डालकर। जपत वाह सिराह = प्रशंसा का वचन कहता हुआ। हथबाह = हाथापाई, धक्कमधक्का।

४३—छोनिय = पृथ्वी, अपना राज्य। उमेद = उम्मेदसिंह। खिज्यो = क्रोध करके। दलेलहि = दलेलसिंह को। खेद = संताप।

४४—सर चंड = तेज बाण। चटठ्ठत चाप = धनुष खींचकर। अमाप = अथाह, बहुत ज्यादा। तोमर-तोम = भालों के समूह। लोम विलोम = रोमांचित।

उरझ्झन अंत्र कटारन तारि, गही जनु नागिनि अंकुस डारि ॥
लगैं खर खंजर प रलीन, मनो प्रतिलोम धसे जल मीन ॥४५॥
चलै फटि पात गदा सिर नीर, मनो तरबूज हनै कर कीर ॥
चलै तजि म्यान छुरी पल चाहु, मनो पिचकारिन वारि प्रवाह ॥४६॥
झरप्पर चिल्हनि गिद्धनि झुंड, सरोस्त चंचुन ऐंचत मुंड ॥
किलोलत स्यार सिवागन कंक, नचैं बहु डाकिनि प्रेत निसंक ॥४७॥
घनै हननकत घोटक घुम्मि, गिरैं कति भिन्न गिरैं झुकि भुम्मि ॥
कुसा गल छुट्टन टुट्टत तंग, भभक्कत भाजत प्रोथन भंग ॥४८॥
परे असवार जर जीन पलान, कितै कविका बिनु लेत उडान ॥
बहै पुर तद्दिन रक्त रु वार, भयी बहि वीथिन वीथिन धार ॥४९॥
मनो यह दुग्ग छुधातुर पाय, दये बलि मानव सम्भर राय ॥
समाकुल लुत्थिन लुत्थिन बट्ट, चढ़ै पल चिक्कन रट्ट चुहट्ट ॥५०॥
गह्यो घन चोरन को दुख जीय, लगे अब रुदिय भूपति हीय ॥
बनै दिन भुम्मि वियोगज भार, कियो जनु सोनित रंग सिंगार ॥५१॥

४५—अंत्र = आँतों में । कटारन तारि = कटारियों की मूठे । लगै.. मीन = तेज खंजर शरीर में घुसता है, मानो मच्छी पानी में उलटी धँसती है ।

४६—पात = चोट । कीर = कीर जाति का मनुष्य । पळ चाह = गोश्त की इच्छा से ।

४७—सिवागन = गीदड़िया । कंक = ढींच, पक्षी विशेष ।

४८—घनै = बहुत से । हननकत = हिनहिनाते है । घोटक = घोड़े । घुम्मि = घूमकर । कुसा = घोडे की लगाम । तंग = घोडे की काठी आदि को कसने का चमडे का पट्टा । प्रोथन भंग = जबड़ों के टूटने से ।

४९—कविका = लगाम । तद्दिन = उस दिन । रक्त रुवार = खून और पानी ।

५०—छुधातुर पाय = भूख से पीडित देखकर । बलि मानव = मनुष्यों का बलिदान । समाकुल = भर गये । बट्ट = मार्ग । पल चिक्कन = माँस और चर्वी ।

५१—वियोगज भार = वियोग का दुख । सोनित रंग = लाल रंग का ।

दलेल लखी तप की तरवारि, धुज्यो छत दुग्ग पलायन धारि ॥
सुन्यो यह जैपुर जामिप भार, कियो निज मन्त्रिय भ्रात तयार ॥५२॥
—वंशभास्कर

५२—दलेल = दलेलसिंह । धुज्यो .धारि = गढ के रहते हुये भागने का विचार कर काँप उठा । जामिप = जामाता ।

सहायक ग्रंथों की सूची

हिन्दी

१ उदयपुर राज्य का इतिहास (डा० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा)

२ वीर विनोद (कविराजा श्यामलदास)

३ बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग १-३ (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी)

४ मिश्रबंधु विनोद, भाग १-४ (श्री मिश्रबंधु)

५ पृथ्वीराज रासो। (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी)

६ राजस्थान रा दूहा (श्री नरोत्तमदास स्वामी)

८ राज विलास (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी)

८ पृथ्वीराज रासो (प० मथुराप्रसाद दीक्षित)

९ कविता कौमुदी, भाग १ (श्री रामनरेश त्रिपाठी)

१० ढोला मारू रा दूहा (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी)

११ वेलि किसन रुकमणी री (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)

१२ वेलि किसन रुकमणी री (डा० एल० पी० टैसीटरी)

१३ हिन्दी साहित्य का इतिहास (प० रामचन्द्र शुक्ल)

१४ हिन्दी भाषा और साहित्य (बाबू श्यामसुन्दरदास)

१५ हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (श्री रामकुमार वर्मा)

१६ वंश भास्कर (प० रामकर्ण आसोपा)

१७ डिंगल कोष (कविराजा मुरारिदान)

१८ वीरसतसई (कविराजा सूर्य्यमल)

१९ राजा रसनामृत (मुंशी देवीप्रसाद)

२० कविरत्न माला (मुंशी देवीप्रसाद)

२१ भारतवर्ष का इतिहास (डा० ईश्वरीप्रसाद)

२२ महाराणा-यश-प्रकाश (ठा० भूरसिंह शेखावत)

२३ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा (प० मोतीलाल मेनारिया)

२४ हरिरस (ईश्वरदास)

२५ विरुद छहतरी (दुरसाजी)

२६ हिन्दी के कवि और काव्य (श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी)

२७ ऊमर काव्य (ऊमरदान)

२८ राजिया रा सोरठा (कृपाराम)
२६ बीसलदेव रासो (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)
३० सूरजप्रकाश (करणीदान)
३१ राणा रासो (दयालदास)
३२ रघुवर-जस-प्रकाश (किशन जी आढा)
३३ बालाबखशजी की जीवनी (पु० श्री हरिनारायण)
३४ हिन्दी भाषा का इतिहास (डा० धीरेन्द्र वर्मा)
३५ वीर विनोद (स्वामी गणेशपुरी)
३६ चतुर चिंतामणि (महाराज चतुरसिंह)
३७ छंद राउ जइतसी रउ (डा० एल० पी० टैसीटरी)
३८ केहर प्रकाश (कविराव बख्तावर जी)

हिन्दी-पत्र-पत्रिकाएँ

१ नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका
२ राजस्थानी
३ हिन्दुस्तानी
४ सरस्वती
५ चारण

अंग्रेजी

1 The Oxford Hisory of India : V.A. Smith
2 A Descriptive Catalogue of Bardic and Historical MSS. Pt. I
3 Preliminary Report on the operation in Search of Bardic chronicles.
4 Annals and Antiquities of Rajsthan : Col. James Tod
5 The Imperial Gazetieer of India, Vol. XXI

अन्य

१ कोशोत्सव स्मारक संग्रह
२ एकादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण
३ हिन्दी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट

—:o:—